श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र) का मुखपत्र
कार्यालय : टोडरमल स्मारक भवन, ए-४, बापूनगर, जयपुर ३०२००४
सम्पादक : डॉ० हुकमचन्द भारिल्ल

आत्मधर्म [४१०]

[हिन्दी, गुजराती, मराठी, तामिल तथा कन्नड़ — इन पाँच भाषाओं में प्रकाशित
जैन समाज का सर्वाधिक बिक्रीवाला आध्यात्मिक मासिक]

संपादक :
डॉ० हुकमचन्द भारिल्ल

प्रबंध संपादक :
अखिल बंसल

कार्यालय :
श्री टोडरमल स्मारक भवन
ए-४, बापूनगर, जयपुर ३०२००४

प्रकाशक :
श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (भावनगर-गुजरात)

शुल्क :
आजीवन : १०१ रुपये
वार्षिक : ६ रुपये
एक प्रति : ५० पैसे

मुद्रक :
सोहनलाल जैन
जयपुर प्रिण्टर्स, जयपुर

क्या

१ और सबै जग....
२ धन्य मुनिदशा!!
३ संपादकीय : क्रमबद्धपर्याय
४ कैसा है यह आत्मा ?
[नियमसार प्रवचन]
५ ऐसा भी कहा जाता है
[समयसार प्रवचन]
६ द्रव्यसंग्रह प्रवचन
७ ज्ञान-गोष्ठी
८ समाचार दर्शन
९ पाठकों के पत्र
१० प्रबंध संपादक की कलम से

आवरण

परमपूज्य भगवान कुन्दकुन्द और उनके समयसाररूपी सूर्य की किरणों से आलोकित हो पूज्य कानजी स्वामी का हृदय-कमल खिल उठा।

आ त्म ध र्म

शाश्वत सुख का, आ म शा ति का, प्रगट करे जो मर्म।
समयसार का सार, सभी को प्रिय, यह आतम धर्म॥

वर्ष : ३५ [४१०] अंक : २

और सबै जग द्वंद मिटावो,
लौ लावो जिन आगम ओरी।टेक॥
है असार जग द्वंद बंधकर,
यह कछु गरज न सारत तोरी।
कमला चपला, यौवन सुरधनु,
स्वजन पथिक जन क्यों रति जोरी॥
और सबै जाग०॥१॥
विषय कषाय दुखद दोनों ये,
इनतें तोर नेह की डोरी।
पर-द्रव्यन को तू अपनावत,
क्यों न तजै ऐसी बुधि भोरी॥
और सबै जग०॥२॥
बीत जाय सागर थिति सुर की,
नर परजाय तनी अति थोरी।
अवसर पाय 'दौल' अब चूको,
फिर न मिलै मणि सागर बोरी॥
और सबै जाग०॥३॥

धन्य मुनिदशा!!

पूज्य बहिनश्री का जन्मदिवस भादवा सुदी २ दिनांक ९-८-७९ को सोनगढ़ में बड़े ही उत्साह से मनाया जा रहा है। ध्यान रहे सोनगढ़ में लगनेवाले वर्षाकालीन शिक्षण-शिविर का यह अंतिम दिन भी होगा। उक्त अवसर पर उनके वचनामृत सागर से कुछ अमृतकणों को यहाँ दिया जा रहा है :—

* धन्य है, वह निर्ग्रंथ मुनिदशा! मुनिदशा अर्थात् केवलज्ञान की तलहटी। मुनि को अंतर में चैतन्य के अनंत गुण-पर्यायों का परिग्रह होता है; विभाव बहुत छूट गया होता है। बाह्य में श्रामण्यपर्याय के सहकारी कारणभूतपने से देहमात्र परिग्रह होता है। प्रतिबंध रहित सहजदशा होती है; शिष्यों को बोध देने का अथवा ऐसा कोई भी प्रतिबंध नहीं होता। स्वरूप में लीनता वृद्धिंगत होती है।

*** मुनि एक-एक अंतर्मुहूर्त में स्वभाव में डुबकी लगाते हैं। अंतर में निवास के लिए महल मिल गया है, उसके बाहर आना अच्छा नहीं लगता। मुनि किसी प्रकार का बोझ नहीं लेते। अंदर जायें तो अनुभूति और बाहर आयें तो तत्त्वचिंतन आदि। साधकदशा इतनी बढ़ गयी है कि द्रव्य से तो कृतकृत्य हैं ही, परंतु पर्याय में भी अत्यंत कृतकृत्य हो गये हैं।**

* गृहस्थाश्रम में वैराग्य होता है; परंतु मुनिराज का वैराग्य कोई और ही होता है। मुनिराज तो वैराग्य-महल के शिखर के शिखामणि हैं।

*** मुनिराज का निवास चैतन्यदेश में है। उपयोग तीक्ष्ण होकर गहरे-गहरे चैतन्य की गुफा में चला जाता है। बाहर आने पर मुर्दे जैसी दशा होती है। शरीर के प्रति राग छूट गया है। शांति का सागर उमड़ा है। चैतन्य की पर्याय की विविध तरंगें उछल रही हैं। ज्ञान में कुशल हैं, दर्शन में प्रबल हैं, समाधि के वेदक हैं, अंतर में तृप्त-तृप्त हैं। मुनिराज मानों वीतरागता की मूर्ति हों—इसप्रकार परिणमित हो गये हैं। देह में वीतराग दशा छा गई है। जिन नहीं, परंतु जिन सरीखे हैं।**

* जैसे पिता की झलक पुत्र में दिखायी देती है; उसीप्रकार जिनभगवान की झलक मुनिराज में दिखती है।

*** जैसे पूर्णमासी के पूर्णचंद्र के योग से समुद्र में ज्वार आता है; उसीप्रकार मुनिराज को पूर्ण चैतन्यचंद्र के एकाग्र अवलोकन से आत्म-समुद्र में ज्वार आता है—वैराग्य का ज्वार आता है, आनंद का ज्वार आता है, सर्व गुण-पर्याय का यथासंभव ज्वार आता है। यह ज्वार बाहर से नहीं, भीतर से आता है। पूर्ण चैतन्यचंद्र को स्थिरतापूर्वक निहारने पर अंतर से चेतना उछलती है, चारित्र उछलता है, सुख उछलता है, वीर्य उछलता है—सब-कुछ उछलता है। धन्य है मुनिदशा!!**

सम्पादकीय

क्रमबद्धपर्याय | एक अनुशीलन

[गतांक से आगे]

सर्व ा को धर्म का मूल कहा गया है।[१] जो व्यक्ति सर्व ा भगवान को द्रव्यरूप से, गुणरूप से और पर्यायरूप से जानता है, वह अपने आ मा को भी जानता है। आचार्य कुंदकुंद अ यंत स्पष्ट शब्दों में लिखते हैं:

जो जाणदि अरहंतं दव्वत्तगुणत्तप ायत्तेहिं।
सो जाणदि अ पाणं मोहो खलु जादि तस्स लयं॥[२]

जो जीव अरहंत अर्थात् सर्व ा भगवान को द्रव्यरूप से, गुणरूप से और पर्यायरूप से जानता है, वह अपने आ मा को भी जानता है और उसका मोह अवश्य नाश को प्राप्त होता है।

इस गाथा में मोह को जीतने का उपाय बताया गया है। इसमें विशेष यान देने यो य बात यह है कि मूलरूप से तो यह कहा गया है कि जो आ मा को जानता है, उसका मोह (मि या व) नष्ट होता है, पर साथ ही यह भी कहा गया है कि जो अरहंत भगवान को द्रव्यरूप से, गुणरूप से और पर्यायरूप से जानता है, वह अपने आ मा को जानता है इसप्रकार मि या व के नाश के लिये अरहंत भगवान को जानना भी अनिवार्य कर दिया गया है। मा ा अरहंत को नहीं, अपितु उ हें द्रव्यरूप से, गुणरूप से और पर्यायरूप से जानना अनिवार्य कहा है।

अपने आ मा और अरहंत भगवान के द्रव्य-गुण तो एक समान ही शुद्ध हैं, पर वर्तमान पर्याय में अंतर है। अपनी पर्याय अल्पविकसित और अशुद्ध है, उनकी पर्याय पूर्ण विकसित और शुद्ध है। इससे स्पष्ट है कि आचार्यदेव ने पूर्णता और शुद्धता जानने को कहा है। इस तरह उ होंने पूर्ण वीतरागता और सर्व ाता के ान को मोह (मि या व) नाश के लिए अनिवार्य माना है। यही कारण है कि आ मानुभूति के साथ-साथ स ो देव-गुरु-शास्ा की सम्यक् पहिचान भी सम्यक् व प्राप्ति के लिये अनिवार्य है।

---

१. कार्तिकेयानुप्रेक्षा, गाथा ३०२ का भावार्थ एवं उत्थानिका

२. प्रवचनसार, गाथा ८०

जब सर्व ाता हमारा लक्ष्य है, प्राप्तव्य है, आदर्श है, उसे प्राप्त करने के लिए ही सारा य न है; तो फिर उसके स ो स्वरूप के परि ाान बिना उसे प्राप्त करने का मार्ग कैसे आरंभ हो सकता है ?

जैन दर्शन की मूलाधार सर्व ाता ही आज संकट में पड़ गयी है। हमारे कुछ धुरंधर धर्मबंधु पक्षव्यामोह में इतने उलझ गये हैं कि सर्व ाता में भी मीन-मेख निकालने लगे हैं। आचार्य समंतभद्र को 'कलिकालसर्व ा' इसलिए ही कहा गया था कि उ होंने कलिकाल में डंके की चोट पर सर्व ाता सिद्ध की थी। वे कोई स्वयं सर्व ा नहीं थे, पर उ होंने कलिकाल के जोर से संकटापन्न सर्व ाता को पुनर्स्थापित किया था, इसलिए वे 'कलिकालसर्व ा' कहलाये। आज फिर कलिकाल जोर मार रहा है, आज युग को फिर एक समंतभद्र चाहिए जो डंके की चोट पर सर्व ाता को सिद्ध कर सके, पुन: स्थापित कर सके।

मोह का नाश कर आ म ाद्धान- ाान और आ मलीनता के इ छुक जनों को अनंत पुरुषार्थपूर्वक मर-पच के भी सर्व ाता का निर्णय अवश्य करना चाहिये। सर्व ाता के निर्णय में क्रमबद्धपर्याय का निर्णय समाहित है। सर्व ाता और क्रमबद्धपर्याय का निर्णय ायकस्वभाव के सम्मुख होकर ही होता है। ायकस्वभाव की स मुखता ही मुक्ति महल की प्रथम सीढ़ी है; उस पर आरोहण का अनंत पुरुषार्थ क्रमबद्धपर्याय की ाद्धा में समाहित है।

इसप्रकार 'सर्व ाता' और 'क्रमबद्धपर्याय' एक प्रकार से परस्परानुबद्ध हैं। एक का निर्णय (स ी समझ) दूसरे के निर्णय के साथ जुड़ा हुआ है। दोनों का ही निर्णय सर्व ास्वभावी निज आ मा के स मुख होकर होता है। यदि कोई व्यक्ति परो मुखी वृत्ति द्वारा 'सर्व ाता' या 'क्रमबद्धपर्याय' का निर्णय करने का य न करे तो वह कभी सफल नहीं होगा।

सर्व ाता प्राप्त करने का प्रारंभिक उपाय सर्व ाता का स्वरूप समझना है। जिसप्रकार जब तीर्थंकर किसी माँ के गर्भ में आते हैं, तो उसके पूर्व स्व नों में आते हैं; उसीप्रकार जिस आ मा में सर्व ाता प्रगट होती है, वह प्रगट होने के पूर्व उसे वह समझ में आती है। सर्व ाता समझ में आये बिना प्राप्त नहीं की जा सकती है।

अभी तो सर्व ाता समझ में ही नहीं आ रही है, प्रगट होने की बात ही कहाँ है ? सर्व ाता की समझे बिना, स्वीकृति बिना, धर्म की उ पत्ति ही संभव नहीं है; तो फिर उसकी स्थिति, वृद्धि और पूर्णता का तो प्रश्न ही कहाँ उठता है ?

सर्व ाता की ाद्धा बिना देव-शास्ा-गुरु की स ी ाद्धा भी संभव नहीं है, क्योंकि स ो देव का तो स्वरूप ही सर्व ाता और वीतरागता है। शास्ा का मूल भी सर्व ा की वाणी है। गुरु भी तो सर्व ाकथित मार्गानुगामी होते हैं। साधुओं को आगमचक्षु कहा है।[१] सर्व ाकथित मार्ग का निरूपण शास्ों में है। शास्ों की प्रामाणिकता के अभाव में गुरु का स्वरूप भी स्पष्ट कैसे होगा? अत: देव-शास्ा-गुरु का स ा स्वरूप समझने के लिये सर्व ाता का स्वरूप समझना अति आवश्यक है।

तार्किकचक्रचूड़ामणि आचार्य समंतभद्र ने देव-शास्ा-गुरु की सम्यक् ाद्धा को सम्य दर्शन के स्वरूप में शामिल किया है। वे लिखते हैं:

ाद्धानं परमार्थानामाप्तागमतपोभृताम्।
ि मूढापोढमष्टांगं सम्य दर्शनमस्मयम्॥४॥[२]

तीन मूढ़ता और आठ मद रहित तथा आठ अंगों सहित स ो देव-शास्ा-गुरु का ाद्धान ही सम्य दर्शन है।

कुछ लोगों का कहना है कि आप 'क्रमबद्धपर्याय' को सर्व ा के साथ क्यों लपेटते हैं? उसे सीधी वस्तु से सिद्ध कीजिए न?

भाई! हम लपेटते नहीं, वह लिपटी हुई ही है; क्योंकि 'सर्व ाता' की ाद्धा बिना 'क्रमबद्धपर्याय' की ाद्धा एवं 'क्रमबद्धपर्याय' की ाद्धा बिना 'सर्व ाता' की ाद्धा संभव नहीं है।

यद्यपि 'सर्व ाता' का सहारा लिये बिना भी 'क्रमबद्धपर्याय' की सिद्धि की जा सकती है, वस्तुस्वरूप के आधार पर हम विस्तार से 'क्रमबद्ध' सिद्ध कर भी आये हैं; तथापि सर्व ाता से उसे अलग करने का आग्रह भी क्यों?

सर्व ाता के आधार पर क्रमबद्धपर्याय सिद्ध करने का एक कारण तो यह है कि जिन लोगों को सर्व ाता की बाहर से ही सही, थोड़ी-बहुत ाद्धा है; उ हें सर्व ाता के आधार पर 'क्रमबद्ध' समझने में बहुत सुविधा रहती है। दूसरी बात यह भी है कि 'क्रमबद्धपर्याय' का विषय अतिसूक्ष्म है; उसे सर्व ाता के आधार बिना साधारण बुद्धिवालों के गले उतारना असंभव नहीं, तो कठिन अवश्य है

---

१. आगमचख्खु साहु

२. रत्नकरण्ड श्रावकाचार, श्लोक ४

मैं आपसे ही कहता हूँ कि सर्व ाता एवं सर्व ाकथित आगम के आधार बिना आप एक लाख योजन का ऊँचा सुमेरु पर्वत ही समझा दीजिए। आखिर आपको यही तो कहना होगा कि शास्ों में लिखा है और शास्ा सर्व ाकथित हैं। जब आप इतना स्थूल एक लाख योजन का सुमेरु पर्वत भी सर्व ाता और सर्व ाकथित आगम के बिना सिद्ध नहीं कर सकते तो फिर 'क्रमबद्धपर्याय' जैसे सूक्ष्म विषय के समझाने में हमसे सर्व ा और सर्व ाकथित आगम का सहारा छोड़ने को क्यों कहते हैं ?

क्या आपका विश्वास सर्व ाता और सर्व ाकथित आगम में नहीं है ? यदि है, तो फिर ऐसी बात क्यों ? सर्व ाता का आधार छुड़ाने की हठ क्यों ? लगता तो यह है कि आपको स्वयं सर्व ाता पर पूरा भरोसा नहीं या सर्व ाता का स्वरूप आपकी दृष्टि में पूरी तरह स्पष्ट नहीं है और सर्व ा की सत्ता से इंकार करने की हिम्मत भी नहीं है। अत: किसी न किसी बहाने इस समर्थ हेतु से अपनी जान छुड़ाना चाहते हैं।

अ छा एक मिनिट 'क्रमबद्धपर्याय' की बात छोड़ भी दीजिए, फिर भी 'सर्व ाता' का निर्णय तो करना ही पड़ेगा। उसके बिना तो देव-शास्ा-गुरु का स्वरूप ही स्पष्ट नहीं होगा। देव-शास्ा-गुरु की रक्षा का नारा लगानेवालों ने कभी देव-शास्ा-गुरु के स ो स्वरूप पर भी गौर करने का कष्ट उठाया है ? क्या सर्व ाता को समझे बिना देव-शास्ा-गुरु का स्वरूप समझा या समझाया जा सकता है ?

आगम के संरक्षकों को क्या यह भी बताना पड़ेगा कि आगम की सबसे पहली शर्त है उसका सर्व ाकथित (आप्तोप ा[१])होना। तथा सर्व ाकथित आगम निश्चित-भविष्य की असंख्य ोषणाओं से भरा पड़ा है।

क्या करणानुयोग का एक भी विषय बिना सर्व ाकथित आगम के आधार के सिद्ध किया जा सकता है, समझाया जा सकता है ? क्या आप आठ कर्मों की सत्ता, उनका बंध, उदय, संक्रमण, उ कर्षण, अपकर्षण, उद्बेलन आदि बिना सर्व ाकथित आगम के आधार के सिद्ध कर सकेंगे ? इसीप्रकार अध:करण, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण के परिणामों की सिद्धि का आधार क्या बनाओगे ?

इन संपूर्ण व इसीप्रकार के अ य विषयों के पठन-पाठन के समय आपको यह प्रश्न

१. आचार्य समंतभद्र : रत्नकरण्डश्रावकाचार, श्लोक ९

क्यों उपस्थित नहीं हुआ कि सर्व ाकथित आगम के आधार बिना इ हें सिद्ध किया जावे, आज ही यह नया प्रश्न क्यों ?

भाई ! जैसा कि कहा गया है कि सर्व ा धर्म का मूल है, तदनुसार धर्मरक्षकों को सर्व ा का निर्णय तो करना ही होगा। आखिर एक जैनदर्शन ही तो ऐसा दर्शन है जो प्र येक आ मा के परमा मा बनने की बात करता है; बात ही नहीं करता, परमा मा बनने का मार्ग बताता है, उस पर चलने की प्रेरणा देता है और छाती ठोककर विश्वास दिलाता है कि इस मार्ग पर चलनेवाले अवश्य परमा मा बनते हैं।

क्या परमा मा बनने के पूर्व परमा मा का स्वरूप समझना जरूरी नहीं है ? यदि है तो फिर सर्व ाता की चर्चा से विराम का आग्रह क्यों ? क्रमबद्धपर्याय का ही क्या, आचार्यों ने तो समस्त जिन-सिद्धांतों का प्रतिपादन सर्व ाता के आधार पर ही किया है। हम किस-किस सिद्धांत के प्रतिपादन में सर्व ा और सर्व ाकथित आगम को तिलांजलि देंगे ?

परमा मा बनने के लिये क्या अपनी आ मा को जानना-अनुभव करना आवश्यक नहीं है ? आचार्य कुंदकुंद के उक्त कथन में तो स्पष्ट ही लिखा है कि जो अरहंत को द्रव्यरूप से, गुणरूप से और पर्यायरूप से जानता है, वह अपने आ मा को जानता है और जो आ मा को जानता है, वह मोह का नाश करता है।

उक्त कथन में स्पष्ट निर्देश है कि मोह का नाश करने के लिये अपनी आ मा को जानना जरूरी है और अपनी आ मा को जानने के पूर्व अरहंत (सर्व ा) को जानना जरूरी है।

क्या देव-शास ा-गुरु की रक्षा उनके स्वरूप को जाने बिना ही हो जावेगी। वे तो अपने स्वरूप में सदा सुरक्षित ही हैं, उ हें हमारी सुरक्षा की आवश्यकता नहीं है। यदि हमें अपनी सुरक्षा करनी हो तो उनके सही स्वरूप को समझें। इसमें ही हमारी और हमारे धर्म की सुरक्षा है।

आगे चलकर उसी प्रवचनसार की ८२वीं गाथा में कुंदकुंदाचार्य ोषणा करते हैं:

सव्वे पि अरहंता तेण विधाणेण खविदकम्मंसा।
कि ा तधोवदेसं णिव्वादा ते णमो तेसिं।

सभी अरहंत भगवानों ने उसी विधि से कर्मों का क्षय करके मोक्ष प्राप्त किया है और अ य आ माओं को परमा मा बनने का उपदेश भी वही दिया है अर्थात् वही मार्ग बताया है ऐसे अरहंतों को नमस्कार हो।

उसी विधि से अर्थात् ८०-८१वीं गाथा में बतायी गयी विधि से उ होंने स्वयं मोक्ष प्राप्त किया तथा उपदेश भी वही दिया। ८०-८१वीं गाथा में बताया गया है कि जो अरहंत भगवान को द्रव्यरूप से, गुणरूप से और पर्यायरूप से जानता है, वह अपने आ मा को जानता है और उसका मोह नष्ट होता है। त पश्चात राग-द्वेष को छोड़कर शुद्ध आ मा को प्राप्त करता है अर्थात् पूर्ण वीतरागता और सर्व ाता प्राप्त करता है।

यही विधि सर्व ाता प्राप्त करने की है, जिससे सभी अरहंतों ने सर्व ाता प्राप्त की है और प्राप्त करने का उपदेश दिया है। टीका में आचार्य अमृतचंद्र ने तो यहाँ तक कहा है कि सर्व ाता प्राप्त करने का प्रकारांतर असंभव है।

अंत में अमृतचंद्रदेव कहते हैं 'अधिक प्रलाप से बस होओ, मेरी मति व्यवस्थित हो गयी है।'[१] तथा ८२वीं गाथा की ही उ थानिका में वे कहते हैं 'भगवंतों द्वारा अनुभूत एवं बताया गया यही एक मोक्ष का पारिमार्थिक है, इसप्रकार बुद्धि को व्यवस्थित करते हैं।'[२]

अरे भाई! जिसकी बुद्धि अव्यवस्थित है, उसे जगत अव्यवस्थित दिखायी देता है। जैसे चलती रेल में बैठे व्यक्ति को जमीन चलती नजर आती है, पर जब विवेक से विचार करता है तो प्रतीत होता है कि जमीन तो अपनी जगह स्थिर है, चल तो मैं ही रहा हूँ। उसीप्रकार अव्यवस्थित मतिवाले को जगत अव्यवस्थित नजर आता है। यदि गंभीरता से विचार करे तो पता चल सकता है कि जगत को व्यवस्थित नहीं करना है, वह तो व्यवस्थित ही है; मुझे अपनी मति व्यवस्थित करनी है।

पर ये अव्यवस्थित मतिवाले लोग जगत को ही व्यवस्थित करने के विकल्पों में उलझे हैं; यों- यों सुलझने का य न करते हैं और अधिक उलझते जाते हैं। क्योंकि जहाँ अव्यवस्था है, वहाँ उनका यान ही नहीं है और जहाँ सबकुछ पूर्ण व्यवस्थित है, जहाँ कुछ भी फेरफार संभव नहीं है; वहाँ के व्यवस्थापक बनने की धुन में विकल हो रहे हैं, और तब तक होते रहेंगे जब तक कि स्वयं अपनी मति को वस्तुस्वरूप के अनुकूल व्यवस्थित नहीं करेंगे।

एक बात यह भी तो है कि कर्त्तृ व के अहंकार से ग्रस्त प्राणियों की मति व्यवस्थित हो भी तो नहीं सकती। क्योंकि व्यवस्थापक बनने की धुन में मस्त जगत यह स्वीकार कैसे कर

---

१. अलमथवा प्रलपितेन। व्यवस्थिता मतिर्मम। —प्रवचनसार गाथा ८२ की टीका

२. अथायमेवैको भगवद्भिः स्वयमनुभूयोपदर्शितो निःश्रेयसस्य पारमार्थिकः पंथा इति मतिं व्यवस्थापयति। —प्रवचनसार गाथा ८२ की उत्थानिका

सकता है कि जगत स्वयं व्यवस्थित है। यदि जगत को स्वयं व्यवस्थित मान लेंगे तो वे व्यवस्थापक कैसे रहेंगे? उनके व्यवस्थापक बने रहने के लिये यह आवश्यक है कि जगत अव्यवस्थित हो, अ यथा वे व्यवस्था किसकी करेंगे, क्या करेंगे? यही कारण है कि व्यवस्थापकों की समझ में व्यवस्थित-व्यवस्था नहीं आ सकती; क्योंकि उससे उनके अहं को चोट लगती है, व्यवस्थापक व का अधिकार छिनता है।

व्यवस्थापक को तो एक अव्यवस्थित जगत चाहिए, जिसकी व्यवस्था वह करे और ान से व्यवस्थापक बना रहे। यही कारण है कि सुनिश्चित स्वयंचालित व्यवस्था जगत की समझ में नहीं आती और उसकी मति व्यवस्थित नहीं होती।

'सर्व ाता' और 'क्रमबद्धपर्याय' की ाद्धा-प्रतीति बिना मति व्यवस्थित हो ही नहीं सकती।

चाहे कितना ही ईमानदार व्यवस्थापक क्यों न हो, व्यवस्थापक द्वारा की गयी व्यवस्था कभी भी पूर्ण व्यवस्थित, सही व यायसंगत नहीं हो सकती, स्वयंचालित व्यवस्था ही पूर्ण व्यवस्थित, सही व यायसंगत होती है।

एक तुलने की मशीन है, जिसमें दस पैसे का सिक्का डालने से आपका सही वजन ात हो जाता है। उस मशीन से जितने भी व्यक्ति अपना वजन ात करेंगे उतने दस पैसे के सिक्के उसके पेट में अवश्य निकलेंगे। ऐसा नहीं हो सकता कि कोई पैसा न डाले और अपना वजन ात कर ले, चाहे वह उस मशीन का मालिक ही क्यों न हो। उसे भी यदि अपना वजन ात करना है तो मशीन में सिक्का डालना ही होगा। किंतु ऐसा आदमी चिराग लेकर ढूँढ़ने पर भी शायद न मिले कि जिसके जिम्मे कांटा कर दिया जाये और कहा जाये कि जो तुले उससे दस पैसे ले लेना। वह स्वयं तुलेगा और पैसा जमा नहीं करेगा, अपने ब ों को तोलेगा और पैसा नहीं देगा। यह संभव नहीं है कि जितने आदमी उस कांटे पर तुलें, उतने पैसे उसके स्वामी को प्राप्त हो ही जावें। अत: स्वयंचालित (ऑटोमेटिक) व्यवस्था ही ठीक है, सही है; पर व्यवस्थापक इसे नहीं मानेगा क्योंकि इससे वह बेकार होता है, उसका कर्तृ व छिनता है, अहंकार टूटता है। यही कारण है कि उसकी मति व्यवस्थित नहीं हो पाती।

व्यवस्थित-व्यवस्था में बेईमानी संभव नहीं है। यही कारण है कि जो नियमित क्रम

अर्थात् व्यवस्थित-व्यवस्था को भंग कर समय के पहिले काम कर लेने की भावना रखते हैं, उ हें व्यवस्थित-व्यवस्था सहज स्वीकार नहीं होती।

'पैसों से आज क्या नहीं हो सकता, पैसों से क्या नहीं मिल सकता? पैसा एक ऐसी शक्ति है, जिसके सामने कोई नियम नहीं चल सकता। उसके सामने सब व्यवस्थाऐं बेकार हैं। पैसों के बल पर मैं जो चाहूँ कर सकता हूँ। पैसों से सारी व्यवस्थाऐं बदली जा सकती हैं।' इसप्रकार के या इसीप्रकार के और कोई अभिमान से ग्रस्त बेईमान जगत की मति का व्यवस्थित होना असंभव नहीं, तो कठिन अवश्य है। उसे एक व्यवस्थित-व्यवस्था अर्थात् क्रमबद्धपर्याय की स्वीकृति होना आसान नहीं है। पर भाई! इस मनुष्य भव में करनेयो य तो एकमा ा यही कार्य है कि हम अपनी मति को व्यवस्थित करें।

सर्व ाता के निर्णय से, क्रमबद्धपर्याय के निर्णय से मति व्यवस्थित हो जाती है, कर्तृ व का अहंकार गल जाता है, सहज ाता-दृष्टापने का पुरुषार्थ जागृत होता है, पर में फेरफार करने की बुद्धि समाप्त हो जाती है; इसकारण त संबंधी आकुलता-व्याकुलता भी चली जाती है, अतीि द्रय आन द प्रगट होने के साथ-साथ अन त शांति का अनुभव होता है।

सर्व ाता के निर्णय और क्रमबद्धपर्याय की ाद्धा से इतने लाभ तो त काल प्राप्त होते हैं। इसके पश्चात् जब वही आ मा, आ मा के आ ाय से वीतराग-परिणति की वृद्धि करता जाता है, तब एक समय वह भी आता है कि जब वह पूर्ण वीतरागता और सर्व ाता को स्वयं प्राप्त कर लेता है। आ मा से परमा मा बनने का यही मार्ग है।

मोक्षाभिलाषी मुमुक्षु बंधुओं को मर-पच के जैसे भी बने सर्व ाता का सही स्वरूप समझने का प्रय न अवश्य करना चाहिये। सर्व ाता का सही रूप ख्याल में आते ही क्रमबद्धपर्याय स्वयं समझ में आ जाएगी, उसके लिए अलग से कोई य न नहीं करना होगा। पर ान रहे सर्व ाता परो मुखी वृत्ति से समझ में आनेवाली वस्तु नहीं, सर्व ाता की पर्याय के स मुख हुई दृष्टि से भी सर्व ाता नहीं समझी जा सकती; सर्व ास्वभावी आ मा के आ ाय से सर्व ाता समझ में आती है। सर्व ाता का सही स्वरूप समझने के लिए आ मो मुखी पुरुषार्थ अपेक्षित है। क्रमबद्धपर्याय समझने का भी एकमा ा यही उपाय है। [क्रमशः]

कैसा है यह आत्मा?

परमपू य दिगम्बर आचार्य कुंदकुंद के प्रसिद्ध परमागम 'नियमसार' की ४३वीं गाथा पर हुए पू य कानजीस्वामी के प्रवचनों का संक्षिप्त सार यहाँ दिया जा रहा है। मूलगाथा इसप्रकार है

णिद्दंडो णिद्दंद्दो णिम्ममो णिक्कलो णिरालंबो।
णीरागो णिद्दोसो णिम्मूढो णिब्भदो अप्पा॥४३॥

आ मा निर्दंड, निर्द्वंद्व, निर्मम, नि:शरीर, निरालंब, नीराग, निर्दोष, निर्मूढ़ और निर्भय है।

[गतांक से आगे]

(६) चौदह प्रकार के अभ्यंतर परिग्रह एकसमय की पर्याय में हैं, शुद्धस्वभाव में उनका अभाव है, अत: आत्मा नीराग है।

'मि या व, वेद, राग, द्वेष, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगु सा, क्रोध, मान, माया, लोभ नामक चौदह अभ्यंतर परिग्रह का अभाव होने से आ मा नीराग है।'

शुद्ध आ मा में चौदह प्रकार के अभ्यंतर परिग्रह नहीं हैं। वे एकसमयमा ा की अवस्था में हैं, परंतु ि ाकाल शुद्धस्वभाव में वे परिग्रह नहीं हैं।

मिथ्यात्व:-परपदार्थ की, निमित्त की, पुण्य-पाप की रुचि करना और स्वभाव की रुचि छोड़ना वह मि या व है। निमित्त हो तो लाभ हो, पुण्य से धर्म होगा, अथवा एकसमय की पर्याय जितना ही आ मा को मानना वह मि या व का महान रोग है, उसे परिग्रह में परिगणित करके, शुद्धा मा में वह नहीं है ऐसा कहा। शुद्धा मा का अवलंबन लेते ही मि या व नष्ट हो जाता है।

वेद:-पुरुषवेद, नपुंसकवेद, स्ा ीवेद एकसमय का विकार है, शुद्धस्वभाव में वह नहीं है। ाानी को अधूरी दशा में अल्पवेद के परिणाम होते हैं, किंतु वह उनको अपनी चीज़ नहीं मानता। वेद की पकड़ नहीं है, ाान को ही अपनी चीज़ मानता है।

राग:-शुभाशुभराग जीव की पर्याय में हैं, ि ाकाली स्वभाव में वे नहीं हैं।

द्वेषः-प्रतिकूलता की आकुलता एकसमय की पर्याय में है, शुद्धस्वभाव में द्वेष नहीं है।

हास्यः-हास्य अथवा कुतूहलता के परिणाम एकसमय पर्य त के हैं, ि काल स्वभाव में वे नहीं हैं।

धर्मी जीव को मि या व के परिणाम नहीं हैं, फिर भी अस्थिरता संबंधी राग-द्वेष-हास्यादि के परिणाम हैं। यदि पर्याय में बिलकुल विकार न हो तो वीतरागता हो जानी चाहिए परंतु ऐसा है नहीं। पर्याय में होनेवाले विकारी भाव शुद्धस्वभाव में नहीं हैं इतना बताने के लिये उनका अभाव कहा। यह कथन अनादि से चली आ रही पर्यायदृष्टि हटाकर द्रव्यदृष्टि कराने के लिये है।

जिस जीव को अपनी शुद्धा मा को छोड़कर अ य चीज़ों को देखकर विस्मय लगे और हास्य उ पन्न हो वह मि या व का हास्य है। धर्मी जीव को अपनी निर्बलता के कारण अल्प हास्य के परिणाम आवें, उनको वह अपना स्वरूप मानता नहीं, क्योंकि ऐसे परिणाम शुद्धस्वभाव में नहीं हैं।

रतिः-अनुकूल पदार्थों के प्रति प्रसन्नता-नया मकान या आभूषणादि की प्राप्ति हो, पु । के ज म-समय प्रसन्नता के परिणाम होना आदि, रति है। वह परिणाम पर्याय में होते हैं, शुद्धस्वभाव में नहीं। धर्मी जीव को रति होने पर भी रति का अवलंबन नहीं है, किंतु शुद्धस्वभाव का ही अवलंबन है।

अरतिः-परीक्षा में असफल होने पर अप्रसन्नता के परिणाम होना अथवा ऐसे किसी अ य प्रसंग पर प्रसन्नता हो आना वह अरति है। एकसमय की पर्याय में ऐसे परिणाम हैं, शुद्धस्वभाव में उनका अभाव है। शुद्धस्वभाव का आ ाय लेने पर अरति आदि टल जाते हैं। आ मा की ाद्धा- ाान करे वही जीव सफल है, अ य सभी असफल हैं।

यहाँ यह सर्व परिणाम पर्याय में होते हैं किंतु शुद्धस्वभाव में नहीं होते, ऐसा कहकर पर्यायबुद्धि छुड़ाई है और शुद्धभाव की स्वभावबुद्धि करायी है।

शोकः-शोक एक समय की पर्याय में है, शुद्धस्वभाव में नहीं। धर्मी जीव को शोक के परिणाम होने पर भी शोक का दृष्टि अपेक्षा से परिग्रह नहीं है। स्वभाव का भान हो गया है, इसलिए शोक का ाान मा । होता है।

भयः-एकसमय की पर्याय में भय के परिणाम होते हैं, किंतु स्वभावदृष्टि से तो आ मा

भय रहित ही है अर्थात् निर्भय है। स्वयं ानस्वभावी आ मा है, ऐसा ान होने पर भय का ान हो जाता है। भय का ान भी भय से नहीं होता। ान भय का नहीं, ान आ मा का ही है। अ ानी जीव को पर्यायबुद्धि होने से भय लगता है। स्वभावदृष्टिवंत को पर्यायबुद्धि का अभाव है, इसलिए वह निर्भय है।

जुगुप्साः- लानि के परिणाम एकसमय की पर्याय में हैं, आ मा में वे परिणाम नहीं हैं। लानि का ान लानि से नहीं होता, किंतु लानिरहित शुद्ध ि काली स्वभाव का ान होने पर पर्याय में होनेवाली लानि का ान हो जाता है और वह अपने स्वभाव में नास्तिरूप से है ऐसा ानी जानता है।

क्रोध, मान, माया, लोभः-कषाय के परिणाम एकसमय की पर्याय में होते हैं, शुद्ध आ मा में उनका अभाव है। मेरा आ मा शुद्ध है, ऐसा ान करने पर कषाय मेरे में है ही नहीं ऐसा ान हो जाता है।

इसप्रकार चौदह परिग्रह के अभाव से आ मा नीराग है।

धर्मी जीव को लड़ाई के परिणाम होने पर भी शुद्ध चैतन्य की दृष्टि के कारण मुख्यपने निर्जरा है। मिथ्यादृष्टि मुनि को दया के परिणाम होने पर भी पर्यायबुद्धि के कारण बन्धदशा ही है।

कोई पूछे कि इसमें धर्म क्या आया ? चौदह परिग्रह पर्याय में हैं, शुद्धस्वभाव परिग्रह रहित हैं ऐसा यथार्थ ान होने पर धर्मदशा प्रगट होती है। इसमें दया पालने का अथवा ऐसा ही कोई दूसरा धर्म नहीं आया।

ऐसा कोई कहे तो उससे कहते हैं कि पर की दया तो तू पाल सकता ही नहीं और ि काली स्वभाव में परिग्रह की पकड़ का अभाव है। आ मा नीराग है-ऐसी दृष्टि हुई वही स्वदया है, वही धर्म है। शुद्ध स्वभाव की रुचि करना ही प्रथम धर्म है। सम्य दृष्टि जीव को युद्ध के परिणाम होने पर भी और अस्थिरता के क्रोध-मान का अल्पबंध होने पर भी, इस अल्पक्रोध-मान जितना ही मैं नहीं, मैं तो शुद्धस्वरूपी नीराग आ मा हूँ ऐसा भान है। बाह्यक्रिया हाथी के ऊपर बैठने की हो, बाणों से दूसरों को मारता हुआ दिखाई पड़ता हो, तो भी क्रोध एकसमय की पर्याय है, उसकी मेरे नीराग स्वभाग में नास्ति है, ऐसा ान का अस्तिपना और विकार का नास्तिपना वर्तता है। धर्मी को शुद्ध चैत यस्वभाव की दृष्टि होने से मुख्यपने

निर्जरा वर्तती है, ाद्धा- ाान अपेक्षा से उसके अहिंसा वर्त रही है; इसके विपरीत मि यादृष्टि मुनि जो व्रतादि के परिणाम को अपना मानता है और मा ा इतना ही आ मा मानता है, उसको नीराग आ मा का भान नहीं है, परिग्रह की पकड़ वर्तती है। वह जीव बाह्य में दया पालता दिखाई देता हो तथापि अपने चैत यस्वभाव का अनादर होने से वह अपनी स्व-हिंसा कर रहा है और बंध दशा को प्राप्त हो रहा है। इसप्रकार स ी दृष्टि से मोक्षमार्ग है और मि यादृष्टि से संसारमार्ग है।

संयोगी भावों को अपना मानना वह संसार है और संयोगी भावों से रहित नीराग आत्मा को मानना वह धर्म है।

परपदार्थों के संयोग को अपना मान लेना तो स्थूल भूल है ही, साथ ही दया-दानादि अथवा हिंसा, झूठ, चोरी आदि संयोगी भाव में ही आ मा को पूर्णतया मान लेना वह संसार है। परपदार्थों का तो आ मा में सदा ही अभाव है और पर्याय में होनेवाले संयोगी भावों का शुद्ध आ मा में अभाव है ऐसी ाद्धा- ाान होने पर पर्याय में भी संसार के अभाव का परिणमन होता जाता है और शुद्ध दशा की प्राप्ति होती है। भरत-बाहुबली को युद्ध के परिणाम होने पर भी तथा बाहुबली को मुनि अवस्था में मान के परिणाम होने पर भी स्वभाव की दृष्टि थी, पर्याय में होनेवाले अल्पमान का स्वीकार नहीं था, किंतु शुद्धचैत य स्वभाव का ही स्वीकार था, अत: समय-समय निर्जरा हो रही थी। ि काली शुद्धस्वभाव की अस्ति और एकसमय के विकार की स्वभाव में नास्ति वह धर्म है, तथा एकसमय के विकार की अस्ति और ि काली स्वभाव की नास्ति ऐसी स्वीकृति वह अधर्म है। चौदह परिग्रह से रहित आ मा नीराग है ऐसी दृष्टि धर्म का कारण है।

(७) ज्ञानशरीरवाला पवित्र आत्मा राग-द्वेषरूपी कचरे को धो डालता है, अत: आत्मा निर्दोष है।

'निश्चय से समस्त पापमल कलंकरूपी कादव को धो डालने में समर्थ, सहज परमवीतराग सुख-समुद्र में म न (लीन-डूबा हुआ) प्रगट सहजावस्थारूप जो सहज ाानशरीर उससे पवि ा होने के कारण आ मा निर्दोष है।'

कैसा है आ मा ? ि काल निर्दोष है। यहाँ पाप का अर्थ विकार समझना। दया, दान, व्रत, काम, क्रोधादि पुण्य-पाप के भाव विकार हैं पाप हैं कलंक हैं। ऐसे समस्त पापमल

कलंकरूपी कीचड़ को धोने में आ मा समर्थ है। आ मा सहज परमवीतराग सुख-समुद्र है, उसमें स्वाभाविक ाान अवस्था डूबी हुई है। यहाँ ि काली स्वभाव शुद्ध तथा उसकी कारणपर्याय भी शुद्ध इसप्रकार दो होकर संपूर्ण द्रव्य, वह द्रव्यदृष्टि का विषय है। ऐसे ि काल शुद्धस्वभाव में डूबा हुआ कारणशुद्धपर्यायरूप जो सहज ाानशरीर है, उससे आ मा पवि ा है। ि काली ाानशरीरस्वभाव में वीतरागी अवस्था डूबी हुई है, उस सहित संपूर्ण आ मा राग-द्वेषरूपी संसार के मैल को धो डालने में समर्थ है। दया-दानादि की वृत्ति उद्भूत होती है, वह कादव है, उसके समक्ष ाानमा ा अर्थात् ाानशरीर है कि जो उस कादव को धो डालता है। अर्थात् ऐसे ाानस्वभाव के ओर की अंतर्दृष्टि करने पर पापमल धुल जाता है।

आ मा का स्वरूप निर्दोष है। औदारिक शरीर तो माता-पिता के निमित्त से मिला है, परंतु आ मा का ाानशरीर किसी के निमित्त से उ पन्न नहीं हुआ है, अत: सहज कहा है। वर्तमान शुद्धपर्यायसहित ि काली द्रव्य वह सम्य दर्शन का विषय है। पुण्यादि के व्यवहार से शुद्धा मा का स्वभाव उपलब्ध हो सकता नहीं, तथा व्यवहार से व्यवहार का ाान भी होता नहीं; किंतु आ मा ि काली ाानस्वरूप है ऐसा ाान होने पर विकल्प और निमित्त का ाान हो जाता है। इसप्रकार आ मा निर्दोषस्वरूप है जो समस्त पाप को धोने में समर्थ है।

(८) (अ) ज्ञानादि अनेक धर्मों के आधारभूत निजपरमात्मतत्त्व को आत्मा जानता है, अत: आत्मा निर्मूढ़ है।

'सहज निश्चयनय से सहज ाान, सहजदर्शन, सहजचारि ा, सहज परमवीतराग सुख आदि अनेक परम धर्मों के आधारभूत निजपरमा मतत्त्व को जानने में समर्थ होने से आ मा निर्मूढ़ है (मूढ़तारहित है)।'

आ मा में अनेक धर्म हैं उनमें सहज ाान, सहजदर्शन, सहजचारि ा, सहजपरमवीतराग सुख आदि हैं। वीर्य आदि गुण उसमें आ जाते हैं। निश्चयनय से उन अनंत धर्मों का आधार निजपरमतत्त्व है। धर्म तो अनेक हैं किंतु धर्मी एक है। यहाँ आ मा का अर्थ है ि काली शुद्धभाव। ि काली शुद्धभाव अनंत गुणों के अभेद निजपरमतत्त्व को जानने में समर्थ है। इसलिये आ मा मूढ़तारहित है। यहाँ वर्तमान पर्याय की बात नहीं है, ि काल चैत यस्वभाव की बात है। ि काल स्वय को जानने के स्वभाववाला है। यहाँ अकेले स्व को जानने में समर्थ है, ऐसा कहकर अकेले स्व की बात लेनी है। ध्रुवपर्याय सहित आ मा को शुद्धभाव जानता

है वह निश्चय है, अत: आ मा मूढ़तारहित है। और जो पर्याय ऐसे आ मा को स्वीकार करे वह पर्याय व्यवहारनय में जायेगी वह अब कहेंगे।

(ब) केवलज्ञान तीन लोक के पदार्थों के द्रव्य-गुण-पर्याय को एकसमय में जानता है, ऐसे निर्मल केवलज्ञानरूप से अवस्थित होने से आत्मा निर्मूढ़ है।

'अथवा सादि-अनंत, अमूर्त, अतींद्रियस्वभाववाला, शुद्धसद्भूत व्यवहारनय से तीन काल और तीन लोक के स्थावर-जंगमस्वरूप समस्त द्रव्य-गुण-पर्यायों को एकसमय में जानने में समर्थ सकल-विमल (सर्वथा निर्मल) केवल ानरूप से अवस्थित होने से आ मा निर्मूढ़ है।'

निर्मूढ़ता का दूसरा बोल है। उसमें केवल ान की बात करते हैं। आ मा का भान साधकदशा में है, परंतु उस अधूरी पर्याय की बात न करके पूर्ण केवल ान पर्याय की बात ली है। शुद्धकारणपरमा मा के आ ाय से प्रगट होनेवाली कार्यरूप केवल ान पर्याय कैसी है? वह नई प्रगट हुई है और अनंतकाल तक टिकेगी, इसलिये सादि-अनंत है; स्पर्श, रस, गंध, वर्ण रहित है, अत: अमूर्त है; इंद्रियों के निमित्त बिना ही आ मा से सीधी प्रगट हुई है, इसलिये अतींद्रिय स्वभाववाली है-ऐसा कहा।

केवल ान समस्त पदार्थों को शुद्धसद्भूत व्यवहारनय से जानता है। केवल ान में किंचित् भी अशुद्धि नहीं, अत: शुद्ध; अपनी पर्याय है, अत: सद्भूत, तथा आ मा और केवल ान की पर्याय ऐसा भेद पड़ता है, अत: व्यवहार; इसप्रकार शुद्धसद्भूत व्यवहारनय कहा है।

वह केवल ान तीन काल और तीन लोक के जड़ तथा चेतन, एवं स्थिर अथवा गमनशील ऐसे सभी पदार्थों को जानता है। समस्त पदार्थों के द्रव्य-गुण-पर्यायों को एकसमय में जानने में समर्थ वह केवल ान सर्वथा निर्मल है। उसीप्रकार प्रगट होने के पश्चात् कभी नाश नहीं होता इसलिये अवस्थित है। इस भाँति केवल ान सादि-अनंत काल टिका रहता है और सर्व को जानता है, अत: आ मा निर्मूढ़ है। केवल ान स्व और पर दोनों को जानता है।

प्रथम निर्मूढ़ के बोल में निश्चय से सहज ानस्वरूप सहित द्रव्य ऐसा जो निज परमतत्त्व उसको आ मा जानता है, वह निश्चयनय का विषय है और वही सम्य दर्शन का येय है, वही आदरणीय है। यहाँ निर्मूढ़ के दूसरे बोल में स्व-पर ायक जो केवल ान, वह व्यवहारनय का विषय है और आदर करने यो य नहीं है। क्योंकि निम्न दशा में केवल ान

पर्याय तो है नहीं और उसका विचार करने से राग उ पन्न होता है; अत: वह सम्य दर्शन का कारण नहीं, वह तो ाान करने का विषय है। इसप्रकार केवल ाान अपेक्षा से भी आ मा को निर्मूढ़ कहा।

कोई कहे कि ऐसी बात सुनने से माथा फिर जाता है। किंतु भाई! तुझे रस नहीं है इसलिये ऐसा प्रतीत होता है। पचास लाख की पूँजीवाले गृहस्थ के यहाँ पचास वर्ष में प्रथम पु ा ज म ले तो उसकी माँ उसके गाने गाते समय कोई कमी नहीं रखती; उसीप्रकार पद्मप्रभमलधारिदेव मुनिराज ने शुद्धभाव, परमभाव इ यादि से आ मा के गीत गाने में कोई कसर नहीं रखी है, अकेले शुद्धभाव के ही गाने गाये हैं।

(९) त्रिकाली शुद्ध अंत:तत्त्व में राग-द्वेषरूपी शत्रु प्रवेश नहीं कर सकते, इसलिये आत्मा निर्भय हैं।

'समस्त पापरूपी शूरवीर श ाुओं की सेना जिसमें प्रवेश नहीं कर सकती, ऐसे निजशुद्ध अंत:तत्त्वरूप महादुर्ग में निवास करने से आ मा निर्भय है यही आ मा वास्तव में उपादेय है।'

यहाँ पाप का अर्थ विकार समझना, इसमें शुभ-अशुभ दोनों भाव आ जाते हैं। इन शुभाशुभ भावों के असंख्य भेद हैं, वे सभी आ मा की शुद्धता को रोकते हैं; अत: श ाु हैं। जहाँ तक आ मा की निर्बलता शेष है, वहाँ तक विकार का जोर है; परंतु शुद्ध अंत:तत्त्वरूपी ऐसा दुर्ग है कि जिसमें विकार की शूरवीर सेना प्रवेश नहीं कर सकती। जगत में राजा महाराजा भी ऐसा सुदृढ़ किला बनाते हैं कि जिसमें श ाु प्रवष्टि न हो सके, और उसको गोला-बारूद न लग सके; उसी तरह कारणपरमा मा में अथवा एकरूप शुद्ध स्वभाव में पुण्य-पापरूपी उदयभाव का कभी भी प्रवेश नहीं हो सकता। जैसे दुर्ग में राजा बैठा हो वैसे ही यहाँ चैत य भगवान राजा अंत:तत्त्व में-शुद्धस्वभाव में विराजता है। उसमें संसार की-विकार की सेना प्रवेश नहीं कर सकती।

यहाँ अंत:तत्त्व का अर्थ अंतरा मा मत समझना, क्योंकि वह तो नवीन प्रगटती निर्मल पर्याय है। यहाँ अंत:तत्त्व अर्थात् अनादि-अनंत एकरूप रहता हुआ शुद्धभाववाला कारणपरमा मा है, जिसके द्रव्य-गुण-पर्याय एकरूप शुद्ध हैं। इसप्रकार अंत:तत्त्वरूप दुर्ग में बसता होने से आ मा निर्भय है। यहाँ तो जीव छोटी-मोटी बातों में भी डर जाता है। परंतु भाई! निर्भय आ मा की ाद्धा- ाान और एकाग्रता करे तो भय उ पन्न होगा ही नहीं।

इन नव बोलों द्वारा लक्षित आ मा का लक्ष करने से धर्मदशा प्रगट होगी। ✱

ऐसा भी कहा जाता है

परमपू य आचार्य कुंदकुंद के सर्वोत्तम ग्रंथराज 'समयसार' की अट्ठाइसवीं गाथा पर हुए पू य कानजीस्वामी के प्रवचनों का संक्षिप्त सार यहाँ दिया जा रहा है। मूल गाथा इसप्रकार है:

इणमण्णं जीवादो देहं पुग्गलमयं थुणित्तु मुणी।
मण्णदि हु संथुदो वंदिदो मए केवली भयवं॥२८॥

जीव से भिन्न इस पुद्गलमय देह की स्तुति करके साधु ऐसा मानते हैं कि मैंने केवली भगवान की स्तुति की, वंदना की।

यहाँ अप्रतिबुद्ध की शंका का समाधान करते हुए आचार्यदेव व्यवहारनय से की जानेवाली स्तुति का वर्णन करते हैं। पहले तेईसवीं, चौबीसवीं और प ीसवीं गाथा में आचार्यदेव ने अ ानी को समझाते हुए कहा था कि सर्व । भगवान ने जीव को उपयोग लक्षणवाला देखा है; इसलिए जीव और पुद्गल भिन्न-भिन्न ही हैं।

जीव और देह की भिन्नता की बात सुनकर शिष्य ने २६वीं गाथा में प्रश्न किया था कि यदि जीव और देह भिन्न-भिन्न हैं तो तीर्थंकरों और आचार्यों की जो स्तुति की गई है, वह सभी मि या हो जाएगी; इसलिये मुझे तो जीव और देह एक ही भासित होते हैं।

शिष्य की उपर्युक्त शंका का समाधान करते हुए आचार्यदेव सत्ताईसवीं गाथा में नयों का स्वरूप बताते हैं कि यद्यपि व्यवहारनय जीव और देह दोनों को एक ही कहता है; किंतु निश्चयनय के अभिप्राय से जीव और देह दोनों जुदे-जुदे ही हैं।

व्यवहारनय से जीव और शरीर एक कहे जाते हैं इसलिये शरीर का स्तवन करने से आ मा का स्तवन हुआ ऐसा व्यवहारनय से कहा जाता है; यह बात अट्ठाईसवीं गाथा में कहते हैं।

आ मभानपूर्वक चारि ादशा प्रगट करनेवाले भावलिंगी स त भी शरीर का स्तवन करके 'हमने भगवान की स्तुति की' ऐसा मानते हैं। यह बात टीकाकार आचार्य अमृतच द्रदेव सोने और चाँदी के पिण्ड के उदाहरण से स्पष्ट करते हैं।

जैसे परमार्थ से सफेदी सोने का स्वभाव नहीं है; फिर भी चाँदी के सफेद गुण के नाम से सोने को भी व्यवहमार ा से 'श्वेतस्वर्ण' कहा जाता है। जब सोने और चाँदी को गलाकर एक पिण्ड बना लिया जाता है, तब सोने को भी श्वेतस्वर्ण कहा जाता है। यद्यपि परमार्थ से तो सोना पीला ही है, सफेदी सोने का स्वभाव नहीं है; तथापि चाँदी के साथ मिला होने से सफेदी ही दिखाई देती है; इसलिये पीले सोने को भी श्वेतस्वर्ण कहते हैं।

उसीप्रकार आ मा और देह अपनी-अपनी यो यता से एक ही स्थान पर रह रहे हैं; इसलिए दोनों भिन्न-भिन्न होते हुए भी देह की स्तुति करने पर आ मा की स्तुति हुई ऐसा कहा जाता है। ाानी जीवों को शरीर के मा यम से भगवान की स्तुति करते समय भी यह ख्याल रहता है कि भगवान का आ मा देह से भिन्न है। भगवान का आ मा और उनका शरीर दोनों एकक्षे ा में रह रहे हैं। इसलिए शरीर का आरोप भगवान के आ मा पर करके उनकी स्तुति में कह दिया जाता है कि भगवान स्वर्णवर्ण के हैं। वास्तव में स्वर्णवर्ण तो शरीर का है और भगवान का आ मा देह से सर्वथा भिन्न है।

भगवान की दिव्य वनि भी भगवान की इ छा बिना अपनी यो यता से खिरती है उसमें भगवान की उपस्थिति निमित्तमा ा है। अत: उपचार से कहा जाता है कि:

'दिव्येन वनिना सुखं ावणयो: साक्षा क्षरंतोऽमृतम्।'

हे भगवान! आप दिव्य वनि से भव्यजीवों के कानों में साक्षात् अमृत बरसाते हैं।

जहाँ केवल ाान और वीतरागता प्रगट होती है, वहीं दिव्यवाणी का योग होता है; दिव्यवाणी के समय केवल ाान की उपस्थिति होती ही है; केवली के अतिरिक्त अ य किसी को दिव्य वनि का योग नहीं होता ऐसे निमित्त-नैमित्तिक संबंध को लक्ष्य में लेकर ाावक और मुनिराज वाणी के मा यम से भगवान की स्तुति करते हैं।

आ मा देह और वाणी से भिन्न है, ऐसी प्रतीतिसहित देह और वाणी के मा यम से भगवान की स्तुति करना व्यवहारस्तुति है। यदि आ मा और देहादि की भिन्नता का ाान न हो तो देहादि का वर्णन करना भगवान की व्यवहारस्तुति भी नहीं है।

स्तुति करते समय भक्त भगवान से कहता है कि हे भगवान! आप हमें सिद्ध पद दीजिए। पण्डित दौलतरामजी जैसे ाानी ाावक भी स्तुति करते हुए कहते हैं:

'मेरे न चाह कछु और ईश, र न ायनिधि दीजे मुनीश।' किंतु इसप्रकार स्तुति करते

समय भी उनके ख्याल में है कि भगवान किसी को र न ाय नहीं दे सकते; र न ाय पाने के लिए आ मा को समझकर उसमें लीन होने का पुरुषार्थ स्वयं करना पड़ता है।

'सिद्धभगवान भी उतर आयें तो भी वे किसी को मुक्ति नहीं दे सकते, मैं स्वयं ही सिद्धसमान ाानानंदस्वभावी हूँ, मेरे पुरुषार्थ द्वारा ही मेरी सिद्धपर्याय प्रगट होगी' ऐसी प्रतीतिवाला भक्त ही विनयपूर्वक भगवान से कहता है कि हे भगवान मुझे सिद्धपद दीजिए। इसप्रकार वस्तुस्वरूप की समझपूर्वक स्तुति करना व्यवहारस्तुति कहलाता है। निश्चय की प्रतीतिपूर्वक होनेवाले शुभपरिणाम अशुभ से बचाते हैं, इसलिए व्यवहार कथंचित् स य है। जब अ तरंग में परमार्थस्तुति प्रगट होती है, तब व्यवहारस्तुति को निमित्त कहा जाता है।

स्तुति करते समय अ ाानी का लक्ष्य मा ा भगवान के शरीर पर रहता है, क्योंकि उसे शरीर से भिन्न आ मा की खबर ही नहीं है। इसलिए वह भगवान के शरीर को ही भगवान मानकर शरीर की ही स्तुति करता है कि दो भगवान गौरवर्ण, दो भगवान श्यामवर्ण, दो भगवान हरितवर्ण, दो भगवान रक्तवर्ण और शेष सोलह भगवान स्वर्णवर्ण के हैं। पर तु शरीर पर ही लक्ष्य होने से अ ाानी का व्यवहार भी स ा नहीं है। ऐसी स्तुति करते समय यदि अ ाानी जीव कषाय की म दता करे तो शुभभाव होता है और उससे पुण्यबंध होता है। परंतु अ ाानी का शुभभाव व्यवहार से भी मोक्षमार्ग नहीं है।

जिने द्र-स्तवन में अनेक जगह कहा जाता है कि स्वर्णवर्ण वाले सोलहों जिने द्र की वंदना करता हूँ। किंतु यह कथन व्यवहारनय की अपेक्षा से किया गया है। इसका अर्थ यह नहीं है कि भगवान स्वर्णवाले थे। वास्तव में भगवान स्वर्णवाले नहीं हैं। वे तो स्वर्णवर्ण वाले शरीर से भिन्न वीतरागी और सर्व ा हैं। जिसे ऐसा भान नहीं है, वह भगवान को वास्तव में स्वर्णवर्णवाले, दिव्य वनिवाले, विहार करनेवाले मान लेता है अर्थात् वह व्यवहार को ही परमार्थ मान लेता है। इसप्रकार अ ाानी जीव व्यवहार और निश्चय का स्वरूप नहीं जानता, अपितु व्यवहार को ही निश्चय मान लेता है।

जिसे सोने के पीले स्वभाव की खबर है, वही उस पर सफेदी का आरोप कर सकता है; किंतु जिसे यही खबर नहीं कि सोना कैसा होता है वह उस पर कोई आरोप भी कैसे कर सकेगा? वह तो वास्तवमें सोने को सफेद मान लेगा, उसका आरोप भी स ा नहीं हो सकता। जि हें देह से भिन्न ाायकस्वरूप आ मा की प्रतीति है ऐसे ाानीजन भगवान के आ मा और

देह की भिन्नता को भी जानते हैं और उनके द्वारा शरीर के मा यम से की गई भगवान की स्तुति स ा व्यवहार है। देह और आ मा की भिन्नता को जाननेवालों द्वारा भगवान के आ मा पर किया जानेवाला शरीर और वाणी का आरोप भी स ा है। जिसे वस्तुस्वभाव की प्रतीति है वही वीतराग का स ा भक्त है और उसके द्वारा किया गया आरोप भी स ा है। आरोप अर्थात् एक पदार्थ में दूसरे पदार्थ को ाटित करके कहना। किंतु जिसे वस्तुस्वभाव की प्रतीति नहीं है, वह आरोप को ही यथार्थ वस्तु मान लेता है इसलिये उसका आरोप ही स ा कहाँ रहा?

भगवान का आ मा अरूपी है तथा शरीररूपी है। अरूपी भगवान रूपी शरीर से भिन्न हैं। शरीरादि के मा यम से भगवान की स्तुति करते समय ाानी को यह प्रतीति होती है कि मैं शरीरादि संबंधी जिन गुणों की स्तुति कर रहा हूँ, वे भगवान के गुण नहीं हैं। भगवान के गुण तो अनंत ाान, अनंतदर्शन, अनंतसुख, अनंतवीर्य इ यादि हैं; ये गुण भगवान के शरीर में नहीं, अपितु उनके आ मा में हैं। 'जैसा जिने द्र भगवान का स्वरूप है वैसा ही मेरा स्वरूप है' जो इसप्रकार अपने आ मा में जिने द्र भगवान के गुणों की स्थापना करता है, वही भगवान की स ाी स्तुति करता है।

जिने द्र भगवान के आ मिक गुणों के स्तवन का शुभ विकल्प भी छोड़कर अपने ाानान दस्वभाव में स्थिर होना ही परमार्थ स्तुति है। शुभ विकल्प छोड़कर अपने स्वरूप में स्थिरता हो जाए तो भगवान का लक्ष्य करने की आवश्यकता ही न रहे। किंतु अभी स्वरूप में पूर्ण स्थिरता नहीं हो सकती इसलिए ाानी को स्वस मुख दृष्टिपूर्वक, स्व-पर के भेद-ाानपूर्वक जिने द्र भगवान के लक्ष्य से उ पन्न होनेवाले दर्शन, स्तुति, पूजन के शुभविकल्प व्यवहारस्तुति है। जितने अंश में स्वरूप-स्थिरता है, उतने अंश में निश्चयस्तुति है; और जितने अंश में शुभविकल्प है, उतने अंश में व्यवहारस्तुति है।

'जिसप्रकार भगवान का आ मा मन-वचन-काय और शुभाशुभ भावों से भिन्न है, उसीप्रकार मैं भी शरीरादि और शुभाशुभभावों से भिन्न हूँ, उ कृष्ट प्रकार का शुभ विकल्प भी मेरा स्वरूप नहीं है' ाानी को निरंतर ऐसी प्रतीति होने पर भी स्वरूप में सर्वथा लीनता नहीं हो सकती। इसलिये अशुभ से बचने के लिये भगवान की स्तुति आदि के शुभभाव आते हैं। जितने अंश में स्वरूप की प्रतीति, ाान और लीनता है, उतने अंश में निश्चयमोक्षमार्ग है; तथा साथ में रहनेवाले शुभविकल्प को असद्भूत व्यवहारनय से मोक्षमार्ग कहते हैं।

शुभराग आ मा का स्वभाव नहीं है इसलिये असद्भूत है; उस पर मोक्षमार्ग का उपचार किया जाता है, इसलिये व्यवहार है; तथा उसका ाान किया जाता है इसलिये नय है; इसप्रकार शुभराग को असद्भूत व्यवहारनय से मोक्षमार्ग कहा जाता है।

ाान-दर्शन-चारि ा की वृद्धि का पुरुषार्थ सद्भूत व्यवहारनय से मोक्षमार्ग है अर्थात् ाान-दर्शन-चारि ा को मोक्षमार्ग कहना या जानना सद्भूत व्यवहारनय से मोक्षमार्ग है। ाान-दर्शन-चारि ा आ मा का स्वभाव है, इसलिए सद्भूत है; उसमें सा य-साधक का भेद पड़ता है अथवा अभेद में भेद पड़ता है इसलिए व्यवहार है; और उसका ाान करना नय है इसप्रकार ाान-दर्शन-चारि ा को सद्भूत व्यवहारनय से मोक्षमार्ग कहते हैं।

ऊपर कहे गये असद्भूत व्यवहारनय, सद्भूत व्यवहारनय, निश्चयनय आदि सभी नय आ मा का अनुभव होने पर सम्य ाान दशा में ही होते हैं।

प्रश्न - व्यवहारनय को अस यार्थ कहा है और शरीर जड़ है इस स्थिति में व्यवहारा ित जड़ की स्तुति करने का क्या फल है?

उत्तर - व्यवहारनय सर्वथा अस यार्थ नहीं है। पूर्णस्वभाव की प्रतीतिरूप सम्य दर्शन होते ही पूर्णवीतरागता प्रगट नहीं होती; इसलिये अशुभ से बचने के लिये शुभभाव अवश्य आते हैं और इन शुभभावों में भगवान की प्रतिमा आदि का निमित्त होना व्यवहार है जो कि कथंचित् स यार्थ है। व्यवहार, व्यवहार से सच है किंतु परमार्थ से अस यार्थ ही है।

शुभभाव से आ मा का अनुभव नहीं होता, किंतु उसका अभाव करके शुद्धभाव प्रगट होने पर आ मा का अनुभव होता है इसलिये व्यवहार अस यार्थ है; किंतु साधक दशा में शुभभाव आये बिना नहीं रहते इसलिये व्यवहार कथंचित् स यार्थ है।

शुभभाव में देव-शास ा-गुरु निमित्त होते हैं इसलिये शुभभाव देव-शास ा-गुरु के सम्मुख करानेवाला है ऐसा जानना व्यवहारनय है। जब यह जीव अपनी यो यता से स्वयं तत्त्व समझता है तब शुभभाव और देव-शास ा-गुरु समझने में निमित्त कहलाते हैं। निमित्त को निमित्तरूप में जानना चाहिये, निमित्त को कारण कहना व्यवहारनय है।

निमित्त के बिना कार्य नहीं होता, किंतु निमित्त से भी कार्य नहीं होता। निमित्त को सहायक मानना अ ाान है। निमित्त आये बिना नहीं रहता और उससे उपादान में कुछ नहीं होता।

जिसे निश्चय की प्रतीति है, उसी को स ा व्यवहार होता है। जो व्यवहार को ही निश्चयरूप मान बैठा है, उसे न निश्चयनय है और न व्यवहारनय। व्यवहार को आदरणीय मानना मि या व है।

स ी-पु ादि की प्रशंसा करने के भाव तो मा पापरूप ही हैं; तथा भगवान के गुणों की प्रशंसा आदि के भाव शुभरूप हैं। अशुभभावों को दूर करके शुभभाव करने का निषेध नहीं है; परंतु शुभ में धर्म मानना मि या व है इसलिए शुभ में धर्म मानने का निषेध है।

शिष्य ने प्रश्न किया था कि जड़ की स्तुति करने का क्या फल है ?

उसका उत्तर यह है कि साक्षात् जिने द्रदेव या उनकी प्रतिमा की शांत मुद्रा को देखने से अपने को भी शांतभाव होता है; ऐसा निमित्त-नैमित्तिक संबंध जानकर शरीर के मा यम से भी भगवान की स्तुति की जाती है। वीतराग की शांत मुद्रा को देखकर अंतरंग में वीतरागभाव का पोषण होता है।

छद्मस्थ को अरूपी आ मा प्र यक्ष दिखायी नहीं देता; किंतु भगवान की प्रतिमा की शांत निष्क्रिय मुद्रा को देखकर अपने अकर्ता स्वभाव की प्रतीति हो सकती है। अपने अकर्ता स्वभाव का निर्णय और उसमें लीनता अपने पुरुषार्थ से होती है, किंतु उससमय भगवान की प्रतिमा की निमित्तरूप में उपस्थिति होने से जिनबिम्ब को सम्य दर्शन में निमित्तकारण कहा जाता है। वीतरागी प्रतिमा को देखकर ानी को अपने वीतरागस्वभाव का स्मरण हो जाता है; तब वह प्रतिमा का लक्ष्य छोड़कर आ मा का लक्ष्य करके उसी में लीन हो जाता है। इस अपेक्षा से भगवान को और उनकी प्रतिमा को शांतभाव प्रगट होने में निमित्त कहा जाता है; किंतु भगवान की मुद्रा देखकर अक्रिय स्वभाव की ओर जिसका लक्ष्य नहीं जाता उसके लिए भगवान को निमित्त नहीं कहा जाता।

इसप्रकार आचार्यदेव ने शरीर के स्तवन के मा यम से भगवान का स्तवन कैसे किया जाता है यह बात स्पष्ट की है।

द्रव्यसंग्रह प्रवचन

वृहद्द्रव्यसंग्रह पर पूज्य स्वामीजी के प्रवचन सन् १९५२ में हुए थे। जिज्ञासु पाठकों के लाभार्थ उन्हें यहाँ क्रमशः दिया जा रहा है।

[गतांक से आगे]

अ यमति जीव-पुद्गल वगैरह को अपनी मा यतानुसार मानते हैं, किंतु धर्म और अधर्म द्रव्य का नाम कहीं भी नहीं है। वे धर्म और अधर्म द्रव्य सर्व ा भगवान ने देखे हैं उनका वर्णन करते हैं।

गइपरिणयाण धम्मो पु गलजीवाण गमणसहयारी।
तोयं जह म छाणं अ छता णेव सो णेई॥१७॥

जीव और पुद्गल स्वयं के कारण गमन करते हैं अथवा क्षे ांतर करते हैं, उसमें धर्मद्रव्य निमित्त है। जिसप्रकार जल मछली को चलाने में सहकारी कारण है, प्रेरणा से चलाता नहीं है; उसीप्रकार गमन न करते हुए जीव-पुद्गलों को धर्मद्रव्य प्रेरणा से कभी भी गमन नहीं कराता है। जो जीव और पुद्गल गमनक्रिया सहित हैं, उनको धर्मद्रव्य सहकारी कारण होता है। जिसप्रकार मछली के गमन में जल सहायक है, उसीप्रकार जीव-पुद्गल के गमन में धर्मद्रव्य निमित्त है; परंतु जो जीव-पुद्गल स्वयं स्थिर हैं, उनको धर्मद्रव्य प्रेरणा से नहीं चलाता है। सिद्ध स्वयं के कारण से स्थिर हैं, उनको धर्मद्रव्य नहीं चलाता है। जो चलता है, उसके चलने में निमित्त कहा जाता है।

अब दूसरा दृष्टांत देते हैं। सिद्ध भगवान अमूर्त हैं, स्पर्श-रस-गंध-वर्ण से रहित हैं, अक्रिय हैं, अर्थात् गमन नहीं करते हैं। स्वयं में ान-दर्शन-चारि ादि आनंद का रूपांतर होता है, लेकिन वे क्षे ांतर नहीं होते हैं, अतः क्रियारहित हैं। तथा 'तू मेरा यान कर' ऐसी किसी को प्रेरणा नहीं देते, इसलिये प्रेरणारहित हैं।

इस जगत में अनंत जीव भ्रमण करते हैं, फिर भी उ हें उपदेश देने नहीं जाते। जैसे 'पुण्य-पाप में धर्म नहीं है, तेरी आ मा में धर्म है' ऐसा उपदेश भी देने नहीं जाते हैं। तब भी वे सिद्ध भगवान भव्यजीवों को सिद्धगति में सहकारी कारण होते हैं। वह कैसे? भव्यजीव विचार करता है कि 'मैं सिद्धसमान हूँ, अनंत ान-दर्शन-चारि ा-वीर्यादि गुणों का पिंड हूँ,

पर्याय में थोड़ा राग उठता है, वह मेरा यथार्थ स्वरूप नहीं है, निश्चय से तो मैं सिद्ध समान हूँ।' इसप्रकार व्यवहार से जो सिद्ध की भक्ति का अर्थात् आ मभक्ति का धारक है, तथा जिसके निश्चय से स्वयं के चिदानंदस्वरूप आ मा का निर्विकल्प यान वर्तता है ऐसे जीव को सिद्ध भगवान निमित्त होते हैं। प्रथम सिद्ध के साथ स्वयं की आ मा को समान समझने से राग की वृत्ति का उ थापन होता है और वह विचारता है कि सिद्ध अशरीरी हैं, विकाररहित हैं, उनकी सभी पर्यायें शुद्ध प्रगट हुई हैं; इसीप्रकार मेरे में भी ऐसी ही शक्ति है, और मैं भी शुद्धदशा प्रगट कर सकूँगा। ऐसा रागसहित विचार करना व्यवहार है, लेकिन वह व्यवहार कब कहा जाता है ?

उस व्यवहार का निषेध वर्तता है, और स्वयं की आ मा में शुद्ध उपादान के कारण निर्विकल्प यान प्रगट किया है, उसको व्यवहार में सिद्ध भक्ति कही जाती है। 'मैं सिद्ध हूँ' ऐसे विकल्प से निर्विकल्प यान प्रगट नहीं होता है, किंतु 'मैं चिदानंदस्वरूप हूँ' ऐसे विकल्प से रहित अंतर में एकाग्रता करने से निर्विकल्पता प्रगट होती है।

प्रश्न–सिद्ध तो शुद्ध हैं, इसलिये क्या वे परद्रव्य कहे जाते हैं ?

समाधान–हाँ! सिद्ध परद्रव्य हैं। परद्रव्य के रागसहित विचार से लाभ नहीं होता। यदि तीन लोक के नाथ से कल्याण होता होवे तो सबका कल्याण होना चाहिये। उनके लक्ष्य से यान नहीं होता, उन पर से लक्ष्य उठाकर स्वयं में एकाग्र होता है, तब निर्विकल्प यान प्रगट होता है।

प्रश्न–यह कौन से गुणस्थान की बात है ?

समाधान–यहाँ चौथे गुणस्थान से निर्विकल्प यान का प्रारंभ होता है। चौथे, पाँचवें और सातवें तथा आगे के गुणस्थानों में निर्विकल्प यान हो सकता है। मुनियों को निर्विकल्प यान बार-बार आता है। मुनि के वस्त्र का एक तार भी नहीं होता, निर्ग्रंथदशावाले मुनि के बाह्य में न न अवस्था होती ही है। ऐसे ही महान मुनि नेमिचंद्र सिद्धांतचक्रवर्ती ने द्रव्यसंग्रह की ५८ गाथा में सारे लोकालोक का, छहद्रव्यों का स्वरूप बहुत अद्भुतरूप से गागर में सागर की तरह भर दिया है।

देखो! यहाँ तो धर्मास्तिकाय का गमन में सहकारीपना बताया है, लेकिन उसमें दृष्टांत सिद्ध भगवान का दिया है। जिस भव्यजीव को स्वयं की आ मा का भान होकर निर्विकल्प

यान प्रगट हुआ है ऐसा भव्यजीव शुभराग के समय विचार करता है कि 'मैं ाानानंद हूँ, ऐसा विकल्प शुभराग है धर्म नहीं है, सिद्ध तो अनंत ाानी अनंतदर्शी हैं और मैं भी होनेवाला हूँ, यह वर्तमान राग अपराध है, और वह अपराध तथा अल्प ाता शुद्ध स्वभाव के आ ाय से दूर हो जायेगी। मैं सिद्धदशा में वीतरागी, अनंत ाानी, अनंतदर्शी प्रगटरूप से होऊँगा।'

जो ऐसे निश्चय के भानपूर्वक सिद्ध के स्वरूप का विचार करता है, वह पुरुषार्थपूर्वक निर्विकल्प यान करके सिद्धदशा प्रगट करता है। उनको सिद्धभगवान सिद्धगति में सहकारी कारण होते हैं। वह तो जब स्वयं ही स्वयं के कारण सिद्धदशा प्रगट करता है, तब अमूर्तिक, अक्रिय और अप्रेरक सिद्धभगवान उस भव्यजीव के प्रति निमित्त कहलाते हैं। किंतु जो सिद्ध का विचार नहीं करते और व्यापार आदि की रुचि में दत्तचित्त रहते हैं, उनको सिद्धभगवान प्रेरणा से विचार नहीं कराते हैं कि 'हे जीव! तू दुःखपूर्वक भ्रमण करता हुआ मर जायेगा। यह शरीररूपीपुद्गल परमाणुओं का स्कंध है, वह तेरे साथ आया नहीं और जायेगा भी नहीं। जैसे वह हमारा नहीं हुआ वैसे तुम्हारा भी नहीं होगा। वह रूपी है, और तू तो अरूपी है, तू मा ा ाानस्वरूप हैं।' ऐसा उपदेश अथवा प्रेरणा करने सिद्ध नहीं आते हैं।

जो अ ाानी जीव यह नहीं समझते हैं उनको वे (सिद्धजीव) निमित्त भी नहीं कहे जाते हैं। यदि सिद्ध के कारण जीव पार होता होवे तो सबको पार हो जाना चाहिये। किंतु जो समझता है और यान करता है, वह सिद्धगति प्राप्त करता है। उसे सिद्ध सहकारी कारण कहे जाते हैं। यह जीवद्रव्य का दृष्टांत पूरा हुआ।

इसीप्रकार धर्मास्तिकाय में सिद्धांत ाटित करते हैं। धर्मास्तिकाय भी क्रियारहित है, क्षे ाांतर नहीं करता, अमूर्त अर्थात् स्पर्श-रस-गंध-वर्ण आदि से रहित है। प्रेरणारहित है अर्थात् किसी को भी चलने की प्रेरणा नहीं देता है। इसप्रकार सिद्धजीव के समान धर्मास्तिकाय के तीन गुण कहे।

जो जीव और पुद्गल स्वयं ही उपादान कारण से क्षे ाांतर करते हैं, उ हें धर्मद्रव्य निमित्त है। जैसे सिद्ध दूसरे जीवों को यान अथवा भक्ति की प्रेरणा नहीं करते हैं, लेकिन यानादिक करनेवालों को निमित्त हैं; वैसे ही धर्मद्रव्य जीव-पुद्गलों को प्रेरणा से नहीं चलाता है, किंतु जो जीव-पुद्गल स्वयं गमन करते हैं, उनको धर्मद्रव्य सहकारी कारण यानि निमित्त होता है। लोक में प्रसिद्ध दृष्टांत है कि जिसप्रकार मछली के गमन में जल सहकारी कारण है,

जल मछली को चलाने में कारण नहीं है, परंतु जो स्वयं मछली चलती है, उसे जल निमित्त है; उसीप्रकार जीव-पुद्गल के गमन में धर्मद्रव्य सहकारी कारण जानना चाहिये।

इस तरह धर्मद्रव्य के व्याख्यानरूप गाथा समाप्त हुई ॥१७॥

सहजदशा का विकल्प करके नहीं बनाये रखना पड़ता। यदि विकल्प करके बनाये रखना पड़े तो वह सहजदशा ही नहीं है। तथा प्रगट हुई दशा को बनाये रखने का कोई अलग पुरुषार्थ नहीं करना पड़ता; क्योंकि बढ़ने का पुरुषार्थ करता है, जिससे वह दशा तो सहज ही बनी रहती है।

जो प्रथम उपयोग को पलटना चाहता है, परंतु अंतरंग रुचि को नहीं पलटता उसे मार्ग का ख्याल नहीं है। प्रथम रुचि को पलटे तो उपयोग सहज ही पलट जाएगा। मार्ग की यथार्थ विधि का यह क्रम है।

ज्ञान-वैराग्यरूपी पानी अंतर में सींचने से अमृत मिलेगा, तेरे सुख का फव्वारा छूटेगा; राग सींचने से दुःख मिलेगा। इसलिए ज्ञान-वैराग्यरूपी जल का सिंचन करके मुक्तसुखरूपी अमृत प्राप्त कर।

जब बीज बोते हैं तब प्रगटरूप से कुछ नहीं दिखता, तथापि विश्वास है कि 'इस बीज में से वृक्ष उगेगा, उसमें से डालें-पत्ते-फलादि आयेंगे', पश्चात् उसका विचार नहीं आता; उसीप्रकार मूल शक्तिरूप द्रव्य को यथार्थ विश्वासपूर्वक ग्रहण करने से निर्मल पर्याय प्रगट होती है। द्रव्य में प्रगटरूप से कुछ दिखायी नहीं देता इसलिए विश्वास बिना 'क्या प्रगट होगा' ऐसा लगता है, परंतु द्रव्यस्वभाव का विश्वास करने से निर्मलता प्रगट होने लगती है। पू. बहिनश्री

ज्ञान-गोष्ठी

सायंकालीन त वचर्चा के समय विभिन्न मुमुक्षुओं द्वारा पू य स्वामीजी से किये गये प्रश्न और स्वामीजी द्वारा दिये गये उ ार।

प्रश्न- द्रव्यदृष्टि को आलंबन किसका होता है ?

उत्तर- द्रव्यदृष्टि शुद्ध अ त:तत्त्व का ही अवलंबन लेती है। निर्मल पर्याय भी बहिर्तत्त्व है। सम्य दर्शन- ाान-चारि ा की निर्मल पर्याय भी बहिर्तत्त्व है, उसका आलंबन द्रव्यदृष्टि में नहीं है। संवर-निर्जरा-मोक्ष भी पर्याय है, अत: वह भी विनाशीक होने से बहिर्तत्त्व है, उसका भी आलंबन द्रव्यदृष्टि को नहीं है। मन-शरीर-वाणी-कुटुंब अथवा देव-शास्ा-गुरु यह तो परद्रव्य होने से बहिर्तत्त्व हैं ही, और दया-दान-व्रत-तपादि के परिणाम भी विकार होने से बहिर्तत्त्व ही हैं; परंतु यहाँ तो जो शुद्ध निर्मल पर्यायरूप सम्य दर्शन- ाान-चारि ा के परिणाम हैं, वे भी क्षणिक अनि य और एकसमयमा ा टिकते होने से, ध्रुवतत्त्व अंत:तत्त्व की अपेक्षा से बहिर्तत्त्व ही हैं। अत: उनका भी आलंबन लेनेयो य नहीं है।

प्रश्न- स ाा और सर्वांगीण होने पर भी प्रमाण ाान पू य नहीं, किंतु निश्चयनय पू य है; इसका क्या कारण है ?

उत्तर- आ मा द्रव्य-गुण-पर्यायस्वरूप है; इसप्रकार प्रथम ाान में ाात करना चाहिये। भले ही यह भेद-कथन का ाान सम्य ाान नहीं है। तथापि प्रथम यह जानना वह ाान का अंग है; सम्यक् होने से पहले वह आता है। द्रव्य-गुण-पर्याय सहितवाला द्रव्य संपूर्ण वस्तु प्रमाण ाान का विषय है; प्रथम ाान में उसको जानना चाहिये। प्रमाण ाान में द्रव्य-पर्याय दोनों आते हैं; अत: वह व्यवहारनय का विषय होने से पू य नहीं है। निश्चयनय का विषय एक ि ाकाली शुद्धा मा है; इसलिये निश्चयनय को पू य कहा है। द्रव्य-गुण-पर्याय में वस्तु व्याप्त होने पर भी शुद्धनय एकरूप शुद्धा मा को ही बतलाता है। वह कहता है कि एक प्र यक्ष प्रतिभासरूप सकल निरावरण नि य निरंजन

निज शुद्धा मद्रव्य वह ही मैं हूँ। द्रव्य-गुण-पर्यायमय वस्तु होने पर भी आ ाय करने के लिये तो मा ा शुद्धा मा ही एक है ऐसा शुद्धनय द्वारा ही निर्णय होता है।

प्रश्न- क्या व्यवहारनय सर्वथा निषिद्ध है ?

उत्तर- नहीं भाई ! व्यवहारनय सर्वथा निषेध करने यो य नहीं है, क्योंकि साधक जीव को जब तक अपूर्ण दशा वर्तती है तब तक भूमिकानुसार दया-दान-पूजा-भक्ति-या ा-व्रत-तपादि का शुभरागरूप व्यवहार आता है, होता है, आये बिना रहता नहीं; और उसको उस-उस काल में उस-उस भूमिका में उसे जानना यो य है, प्रयोजनवान है; निषेध करनेयो य नहीं। परंतु इसका ऐसा अभिप्राय कदापि नहीं है कि वह आदरणीय भी है। हाँ, भूमिकाप्रमाण उ पन्न होनेवाले राग को जानना उचित ही है।

प्रश्न- आकाश के एकप्रदेश में अनंत परमाणु और अनंत जीवों के प्रदेश कैसे रह सकते हैं ?

उत्तर- जिसका जो स्वभाव हो उसमें कोई मर्यादा या हद नहीं हो सकती; स्वभाव तो सदैव अमर्यादित और असीम ही होता है। लोक में स्थित अनंत परमाणु सूक्ष्म रूप से आवें तो उ हें आकाश का एकप्रदेश अवगाहन देता है; ऐसा अवगाहन देने का आकाश का अमर्यादित स्वभाव है। आकाश के एकप्रदेश में इतना असीम साम र्य है कि अनंत पुद्गलों और अनंत जीवों के प्रदेशों को तथा धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय और काल के एक-एक प्रदेश को एक साथ अवगाहन दे सकता है।

यह आकाश का एकप्रदेश होता कितना है ? जितने क्षे ा में एक परमाणु रहता है, उतने ही मापवाला होता है; किंतु उसमें अनंत को अवगाहन देने की अमाप साम र्य है। देखो ! यह सारी बातें कहने का मूल ता पर्य तो इन सबको जाननेवाली एक समयवर्ती ाानपर्याय की साम र्य बताने का है।

एकसमय की ाानपर्याय अनंतानंत पदार्थों को उनकी भूत-भविष्य की पर्यायों सहित जान लेती है। इस जाननेवाले स्वभाव की अमर्यादितता-अमापता कितनी ? अरे ! जड़रूप आकाश का एकप्रदेश अनंत रजकण को अवकाश-स्थान दे सकता है तो उसको जाननेवाले जीव के ाायकस्वभाव का साम र्य तो अमर्यादित, अमाप, अनंत है ही उसका क्या कहना ? गजब बात है ! अरे ! यह तो अपना ही हित करने की बात है; दूसरों को समझाने के लिये नहीं। अपने ाान का साम र्य कितना है, वह स्वयं समझ

कर, विश्वास में लेकर अंदर में समाने के लिये हैं।

ीमद् राजच द्रजी कहते हैं कि ''जो समझा वह समा गया, बाह्य में कहने के लिये रुका नहीं''। अहाहा! ऐसे स्वभाव का माहा म्य जिस पर्याय में आया वह पर्याय अंदर में प्रविष्ट हुए बिना रहे नहीं और भगवान आ मा से भेंट करे ही।

प्रश्न– एक पुद्गलपरमाणु के दो टुकड़े नहीं हो सकते क्योंकि वह अ यंत छोटा है, तो फिर उसमें अनंतगुण किसप्रकार हो सकते हैं?

उत्तर– एक परमाणु के दो भाग नहीं हो सकते; इतना सूक्ष्म होने पर भी उसमें अनंत गुण (जीव के गुणों के समान) हैं; आहाहा! ऐसा वस्तु का स्वभाव सर्व ा ने देखकर, जानकर कहा है। आ मा स्वयं ही सर्व ास्वभावी है। एक परमाणु और उसके अनंत परमाणुओं का एक स्कंध तथा ऐसे अनंत स्कंधों का एक महास्कंध इन सबको जाननेवाला आ मा सर्व ास्वभावी है। इस सर्व ास्वभावी आ मा की स ी ाद्धा करनी है, क्योंकि ाद्धा- ाान को सम्यक् किये बिना समस्त तप- याग संसार-भ्रमण के कारण हैं।

प्रश्न– क्या सम्य दृष्टि भी सर्व ा की तरह राग को मा ा जानता ही है?

उत्तर– जिसप्रकार सर्व ा को लोकालोक ोय है, लोकालोक को सर्व ा जानता है; उसीप्रकार जिसने सर्वस्वभावी को दृष्टि में लिया है ऐसा सम्य दृष्टि सर्व ा के समान राग को जानता ही है। सर्व ा को जानने में लोकालोक निमित्त है; उसी तरह सम्य दृष्टि को जानने में राग निमित्त है। सम्य दृष्टि राग को करता नहीं है, किंतु लोकालोक के ाता सर्व ा की तरह वह राग को जानता ही है। ऐसी वस्तुस्थिति है और ऐसे ही अंदर से आती और बैठती है। यह बात तीन काल तीन लोक में बदल जाये ऐसी नहीं है। अ य किसी प्रकार से भी वस्तु की सिद्धि हो सकती नहीं। यह तो अ दर से ही आयी हुई वस्तुस्थिति है।

प्रश्न– सम्य दृष्टि राग का कर्ता नहीं, सर्व ा की तरह मा ा राग का ाता ही है, फिर भी सम्य दृष्टि की पर्याय में राग होता तो है न?

उत्तर– राग वह सम्य दृष्टि की पर्याय ही नहीं। समयसार गाथा १२ में कहा है न! 'उस समय जाना हुआ प्रयोजनवान है।' सर्व ा एकसमय में एकसाथ ि काल को जानते हैं और नीचे साधक जीव उस-उस काल के राग को जानता है। जैसा-जैसा ाान होता है,

वैसा ही राग निमित्त में होता है। आगे-पीछे ाान हो यह बात ही नहीं है एक काल में ही है।

धर्मी जीव जानता है कि द्रव्यों में पर्यायें हो रही हैं, उ हें सर्व ा जान रहा है। उ हें करे क्या? तथा सम्य दर्शनादि में धर्म की पर्याय भी हो रही है, उसे करे क्या? जो पर्याय स्वकाल में हो ही रही है, उसे करे क्या? और उसे करने का विकल्प भी क्यों? सर्व ा तो प्र यक्ष देख रहा है और नीचे धर्मी जीव परोक्ष देख रहा है। मा ा प्र यक्ष-परोक्ष का ही अंतर है। केवल दिशा बदलनी है, अ य कुछ भी करने का नहीं है।

जो पर्याय होनेवाली है, उसे करना क्या? और जो नहीं होनेवाली है, उसे भी करना क्या? ऐसा निश्चय करते ही कर्तृ व बुद्धि छूटकर स्वभाव-स मुखता हो जाती है। सर्व ादेव ि काली को देखने-जाननेवाला है और मैं भी ि काली का ाता-दृष्टा ही हूँ। इसप्रकार ि काली ाायकस्वभाव का निश्चय करना वही सम्य दर्शन है।

प्रश्न- सम्य दृष्टि को शुद्ध आ मा का विचार उपयोग में चल रहा हो, उसे ही शुद्धोपयोग कहते हैं न?

उत्तर- नहीं, शुद्धा मा का विचार चलना शुद्धोपयोग नहीं है, यह तो रागमि ित विचार है। शुद्धा मा में एकाग्र होकर निर्विकल्प उपयोगरूप परिणाम हो वह शुद्धोपयोग है। जिसमें ोय- ाान- ाता का भेद छूटकर मा ा अभेदरूप चैत यपिण्ड ही अनुभव में आवे-वह शुद्धोपयोग है।

प्रश्न- व्यवस्थित जानना ाान का स्वभाव है क्या? स्पष्ट कीजिए।

उत्तर- आ मा ाानस्वरूप है और उसकी केवल ानादि पाँच पर्यायें हैं। केवल ाान अपने गुण के व्यवस्थित कार्य को जानता है तथा अ य द्रव्यों के भी व्यवस्थित कार्य को जानता है। उसीप्रकार मति ाान भी अपने गुण के व्यवस्थित कार्य को जानता है पर के कार्य को भी व्यवस्थित जानता है। ुत ाान, अवधि ाान, मन:पर्यय ाान भी अपने-अपने गुण के व्यवस्थित कार्य को तथा पर के कार्य को भी व्यवस्थित जानते हैं। व्यवस्थित जानना उनका स्वभाव है। आ मा अकेला ाानस्वरूप है अर्थात् उसकी पर्याय, गुण और द्रव्य बस, मा ा ाता ही हैं, फेरफार करनेवाले नहीं। अपने में भी कोई फेरफार करना नहीं है, जैसा व्यवस्थित कार्य होता है, वैसा जानता है। आहाहा! देखो तो सही!

वस्तु ही ऐसी है। अंदर में तो खूब गंभीरता से चलता है परंतु कथन में तो....।

प्रश्न– स्वानुभव में से विकल्प में आने के पश्चात् ाता-दृष्टा में कुछ फेर पड़ता है क्या?

उत्तर– स्वानुभव में से जब विकल्प में आता है, तब भी केवली की भाँति ाता-दृष्टा ही है। अनुभव में केवली के समान ातादृष्टा है और विकल्प में आ जाने पर भी ाता-दृष्टा ही है। विकल्प आता है, वह भी छूटा हुआ ही है। केवली पूर्ण ाता-दृष्टा हैं और यह नीचेवाला अल्प ाता-दृष्टा है, परंतु हैं तो दोनों ाता-दृष्टा ही।

प्रश्न– ानी को शुभभाव अशुभभाव से बचने के लिए आता है इसका ता पर्य क्या है?

उत्तर– ानी को जो शुभभाव आता है, वह अशुभ से बचने के लिये आता है ऐसा जो कहने में आता है, वह तो लोगों को जरा संतोष हो जाये इसलिये कहने में आता है। वास्तव में देखा जाये तो वह शुभराग उसके अपने आने के काल में ही आता है।

प्रश्न– तो फिर प्रायश्चित क्यों करने में आता है?

उत्तर– यह सब कथनमा ा की बात है, कथन की पद्धति है। वास्तव में तो ऐसे विकल्प आने का काल था, अत: वही आया और वाणी भी ऐसी ही निकलनेवाली थी, अत: वही निकली। अधिक सूक्ष्म में जावें तो वास्तव में शुभविकल्प तथा प्रायश्चित की वाणी निकलना अथवा गुरुवाणी निकलना, यह सब पुद्गल का स्वाभाविक कार्य हैं आ मा का कार्य नहीं, आ मा तो मा ा ानस्वभावी है।

प्रश्न– शास्ा में कहीं तो कथन आता है कि पर्याय का उ पादक द्रव्य है और कहीं आता है कि पर्याय स्वयं सत् है, उसे द्रव्य की अपेक्षा नहीं सो किसप्रकार है समझाइएगा।

उत्तर– वास्तव में पर्याय पर्याय में ही अर्थात् अपने से ही है। उसे पर की अपेक्षा तो है ही नहीं, और वास्तव में अपने द्रव्य की भी अपेक्षा पर्याय को नहीं है। जब पर्याय की उ पत्ति सिद्ध करनी हो तो 'द्रव्य से पर्याय उ पन्न हुई' ऐसा कहा जाता है, किंतु जब पर्याय 'है' इसप्रकार उसकी अस्ति सिद्ध करनी हो तब पर्याय है, वह अपने से सत्रूप है है और है, उसको द्रव्य की भी अपेक्षा नहीं। अत: जहाँ जो अपेक्षा सिद्ध करनी हो वहाँ वही अर्थ निकालना चाहिये।

*

समाचार दर्शन

सोनगढ़ में धार्मिक शिक्षण-शिविर अत्यंत उल्लासमय वातावरण में प्रारंभ

सोनगढ़ :- पू य गुरुदेव ी कानजीस्वामी सुख-शांति में विराजमान हैं। उनकी मंगल छ ा-छाया में २१ जुलाई १९७९ से धार्मिक शिक्षण-शिविर अ यंत उ साह एवं उमंग के साथ प्रारंभ हो गया है।

पू य स्वामीजी के प्रात: समयसार गाथा ३०८-३११ के आधार पर क्रमबद्धपर्याय पर तथा दोपहर को नियमसार शुद्धभाव अधिकार पर अ यंत गंभीर एवं मार्मिक प्रवचन हो रहे हैं। पू य स्वामीजी के अंतर्मुखी मार्मिक एवं सारगर्भित प्रवचन शिविर की आकर्षक विशेषता है।

उत्तम वर्ग में आदरणीय विद्वद्वर्य पंडित लालचंदभाई द्वारा रहस्यपूर्ण चिट्ठी पर अ यंत गंभीर एवं आ यात्मिक शिक्षण दिया जा रहा है तथा डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल द्वारा मोक्षमार्ग प्रकाशक के चौथे और सातवें अधिकार में वर्णित सात तत्त्व संबंधी भूलों की तुलना मक अ ययन अ यंत रोचक, आकर्षक एवं हृदयग्राही शैली से किया जा रहा है। रात्रि को प्रवचनकार-प्रशिक्षण की कक्षा के अंतर्गत भारिल्लजी के प्रवचन भी क्रमबद्धपर्याय पर होने से सारा वातावरण क्रमबद्धमय हो गया है। एक सप्ताह बाद डॉ० साहब नयचक्र के आधार पर 'नयों का स्वरूप' विषय पर प्रवचन करेंगे।

म यमवर्ग में सुबह एवं शाम को पंडित ानचंदजी विदिशा द्वारा अ यंत लोकप्रिय शैली से छहढाला का शिक्षण दिया जा रहा है तथा ज ा यवर्ग में पंडित नेमीचंदजी रखियाल वालों द्वारा ल ु जैन सिद्धांत प्रवेशिका एवं छहढाला की कक्षा ली जा रही है। दोपहर को भी भिन्न-भिन्न विद्वानों द्वारा कक्षा ली जाती है।

उक्त प्रवचन एवं कक्षाओं का लाभ बाहर से पधारे हजार-बारह सौ मुमुक्षु भाई-बहन ले रहे हैं। यह शिविर ९ अगस्त तक चलेगा। ९ अगस्त को सम्माननीय बहिन ी चंपाबेन का ६६वाँ ज म-दिवस अ यंत हर्षोल्लास के साथ मनाया जाएगा।

[विस्तृत समाचार अगले अंक में]

अनुदान में वृद्धि

अनुदान प्राप्त वीतराग-वि ान पाठशालाओं के संचालकों से अनुरोध है कि वे इस वर्ष

(जुलाई ७९ से जून ८० तक) के लिए अनुदान संबंधी प्रार्थना-प ा भरकर शी ा भेजें। संबंधित सभी पाठशालाओं को खाली फार्म भेजे जा चुके हैं। जि हें न मिले हों वे पुन: कार्यालय को लिखकर मंगा लें। अ य जो नयी पाठशालाएँ प्रारंभ हुई हैं, उनकी सूचना दें एवं अनुदान चाहनेवाली पाठशालाएँ संबंधित फार्म मंगाकर भरकर भेजें।

यान रहे जुलाई ७९ से अनुदान में वृद्धि कर दी गयी है। बढ़े हुए अनुदान के अनुसार अब प्र येक पाठशाला को २०) रुपये की जगह २५) रुपये प्रतिमाह मिला करेगा।

— मंत्री, भारतवर्षीय वीतराग विज्ञान पाठशाला समिति,
ए-४, बापूनगर, जयपुर-३०२००४

कौन-कहाँ?

ी दिगम्बर जैन स्वा याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़ के पास अनेकानेक नगरों से पर्यूषण-पर्व में प्रवचनार्थ भेजने के लिए आग्रहपूर्ण आमं ण आये हैं, पर विद्वानों की कमी के कारण सभी स्थानों पर विद्वान भेजना संभव नहीं हो सका है। ३१ जुलाई १९७९ तक निश्चित हुए विद्वानों के नाम निम्नप्रकार हैं। शेष विद्वानों के नाम अगले अंक में प्रकाशित किये जाऐंगे।

कोटा - पंडित बाबूभाई मेहता, फतेपुर; **सतना** - डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल, जयपुर; **अहमदाबाद** - पंडित हिम्मतभाई जोबालिया, सोनगढ़; **मेरठ** - पंडित ानचंदजी, विदिशा; **ललितपुर** - पंडित नेमीचंदजी पाटनी, आगरा; **अजमेर** - पंडित धन्नालालजी, वालियर; **जयपुर** - पंडित रतनचंदजी भारिल्ल, जयपुर; **विदिशा** - पंडित उत्तमचंदजी सिवनी; **अशोकनगर** - ब्रह्मचारी पंडित जतीशचंदजी, जयपुर; **नागपुर** - ब्रह्मचारी पंडित अभिनंदनकुमारजी, जयपुर; **कलकत्ता** - पंडित अभयकुमारजी, जयपुर; **भोपाल** - पंडित क हैयालालजी, दाहोद; **दाहोद** - पंडित रमणभाई, पाटन; **भीलवाड़ा** - पंडित रमेशचंदजी, जयपुर; **नेमिनगर (इंदौर)** -ब्रह्मचारी पंडित हेमचंदजी, भोपाल; **बम्बई (मुम्बादेवी)**- पंडित केशरीचंदजी धवल, बुलढाना; **मंडी बामौरा** - पंडित राकेशकुमार शास्ी, जयपुर; **रांझी (जबलपुर)** - पंडित ेयांसकुमारजी शास्ी, जयपुर; **जयपुर (आदर्शनगर)** - पंडित शिखरचंदजी, बड़ौत; **बम्बई (दादर)** - पंडित नेमीचंदभाई रखियाल, दादर; **बम्बई (मलाड)** - पंडित प्राणलाल कामदार, दादर; **बम्बई (घाटकोपर)** - पंडित चिमनलाल ठाकरशी, बम्बई; **मुंगावली** - पंडित संतोषकुमारजी, जयपुर; **धार** - पंडित विमलचंद झाँझरी, उ ैन; **तलोद** - ब्रह्मचारी झमकलालजी, सोनगढ़; **फतेहपुर (गुजरात)** - पंडित

भानुकुमारजी, जयपुर; **खंडवा** – पंडित प्रदीपकुमारजी झाँझरी, जयपुर; **सोलापुर** – पंडित जवाहरलालजी, विदिशा; **उदयपुर** – पंडित सुशीलकुमारजी, रा ौगढ़; **रणासण** – पंडित बेलजीभाई, उ ैन; **चंदेरी** – पंडित उग्रसेनजी बंडी, उदयपुर; **भिण्ड** – पंडित देवीलालजी, उदयपुर; **डोगरगढ़** – पंडित राजकुमारजी शास्ी, जयपुर; **मुरादाबाद** – पंडित नंदकिशोरजी गोयल, विदिशा; **मंदसौर** – पंडित मणिभाईजी, बम्बई; **दिल्ली** – पंडित बाबूभाई नाथालाल, फतेपुर; **बैंगलोर** – पंडित चंदूभाई, फतेपुर; **गढ़ाकोटा** – ब्रह्मचारी आ मानंदजी; **लोहारदा** – पंडित नवलभाई सोनगढ़; **मलकापुर** – पंडित गोविंददासजी, खड़ेरी; **अलवर** – पंडित कैलाशचंदजी, जयपुर; **देहरादून** – पंडित कैलाशचंदजी, बुलंदशहर; **मद्रास** – पंडित डाह्याभाई, अहमदाबाद; **मालथौन** – पंडित बाबूलालजी, बरायठा; **गुना** – पंडित राजमलजी, भोपाल; **फिरोजाबाद** – पंडित कपूरचंदजी सागर; **मौ** – पंडित रंगलालजी, कुराबड़; **लींबड़ी** – पंडित शांतिभाई शाह, सोनगढ़; **मुरार** – पंडित शिखरचंदजी, विदिशा; **छिंदवाड़ा** – पंडित कस्तूरचंदजी, बेगमगंज; **लश्कर** – पंडित ताराचंदजी, सागर; **सनावद** – पंडित दीपचंदजी, इंदौर; **उज्जैन** – पंडित पन्नालालजी, करेली; **कूंण** – पंडित लक्ष्मीचंदजी, दिल्ली; **अम्बाह** – पंडित ानचंदजी, करेली; **बड़वाह** – पंडित विनोदकुमारजी, जबेरा; **बाशीम** – पंडित रमेशचंदजी, ललितपुर; **गंजबासौदा** – ब्रह्मचारी हेमराजजी, भोपाल; **सागर** – पंडित शुभचंदजी जैन, विदिशा; **नागदा** – पंडित पन्नालालजी, करेली; **डबोक** – पंडित कैलाशचंदजी, अशोकनगर; **कुराबड़** – पंडित राजकिशोरजी, जयपुर; **रतलाम** – पंडित अमोलकचंदजी ब धु, अशोकनगर; **बक्सवाहा** – पंडित गोटालालजी, पिपरई; **बीना** – पंडित ासीलालजी, गुना; **खातेगाँव** – पंडित प्रकाशचंदजी पाण्डया, इंदौर; **बन्डील** – पंडित सागरचंदजी, भोगाँव; **हिम्मतनगर** – पंडित हीराभाई, सोनगढ़; **महिदपुर** – पंडित धन्नालालजी, मेहारदा; **जाबुंड़ी** – पंडित छबीलदासजी, सुरे द्रनगर; **बेगमगंज** – पंडित बाबूलालजी टोपीवाले, बीना; **लश्कर** – पंडित कपूरचंदजी, करेली; **राघौगढ़** – पंडित चंपालालजी पटवारी, ललितपुर; **प्रतापगढ़** – पंडित प्रहलाददासजी, मंदसौर; **मंडला** – पंडित प्रबोधचंदजी जैन, छिंदवाड़ा; **ऐत्मादपुर** – पंडित गंभीरचंदजी जैन वैद्य, एटा; **उज्जैन** – पंडित मांगीलालजी, गुना; **मुरादाबाद** – पंडित नंदकिशोरजी गोयल, विदिशा; **बंडा** – पंडित विजयकुमारजी, बरायठा; **वारशी** – डॉ० प्रियशंकरजी, हिंगोली।

अष्टाह्निका पर्व सानंद संपन्न

नई देहली - स्थानीय ग्रीनपार्क में अष्टाह्निका पर्व के अवसर पर पंडित ानचंदजी विदिशावाले पधारे। आपके प्रतिदिन प्रात: छहढाला पर एवं रा ि में मोक्षमार्गप्रकाशक तथा सिद्धचक्र विधान-पूजन की जयमाला पर सारगर्भित प्रवचन हुए। पंडित बाबूलालजी 'सौज य' ने सिद्धचक्र मंडल विधान संपन्न कराया। इस अवसर पर ी कुंदकुंद कहान तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट के लिए ४३५६) रुपये की नगद राशि प्राप्त हुई तथा लगभग ५ हजार रुपये के नये वचन प्राप्त हुए। आ मधर्म एवं जैनपथ प्रदर्शक के अनेक ग्राहक बनाये गये।

—माणकचंद जैन

भीलवाड़ा (राज०) - ी टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धांत महाविद्यालय जयपुर के छा ा ब्रह्मचारी अभिनंदनकुमारजी पधारे। आपके द्वारा सात तत्त्वों संबंधी भूल एवं धर्म के स्वरूप का यथार्थ विवेचन आकर्षक शैली में किया गया। आपके प्रवचनों से समाज को अ छा धर्मलाभ मिला। **— डॉ० पारसमल अग्रवाल**

मौ (म०प्र०) - ी सिद्धचक्रमंडल विधान पूजन ी चंपालालजी जैन के संगीत के साथ संपन्न हुआ। प्रतिदिन पंडित शांतिकुमारजी द्वारा शास्ा प्रवचन एवं शिक्षण कक्षाऐं चलती थीं। अंतिम दिन ी भक्तामरजी विधान एवं अखंड पाठ का आयोजन किया गया।—**जिनेशचंद**

बड़वाह (म०प्र०) - अष्टाह्निका पर्व के अवसर पर टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धांत महाविद्यालय जयपुर के छा ा ब्रह्मचारी जतीशचंदजी एवं पंडित अभयकुमारजी के पधारने से समाज में महती धर्मप्रभावना हुई। ब्रह्मचारी जतीशचंदजी की अ यक्षता में युवा फैडरेशन की स्थानीय शाख का पुनर्गठन किया गया। 'बाहुबली अभिषेक' चलचि ा का प्रदर्शन भी किया गया। **— जैनेन्द्रकुमार गोठाणे**

मेरठ (उ०प्र०) - स्थानीय ी दिगम्बर जैन पंचायती मंदिर में पंडित धन्नालालजी वालियर वालों के सान्नि य में सिद्धचक्रमंडल विधान का आयोजन किया गया। प्रतिदिन सामूहिक पूजन-विधान, प्रवचन एवं भक्ति-संगीत का आयोजन किया गया। छहढाला, मोक्षमार्ग प्रकाशक, एवं सिद्धचक्र जयमाला पर आपके प्रभावपूर्ण प्रवचन हुए।

— हुकमचंद जैन

अलोद (राज०) - अष्टाह्निका पर्व पर सिद्धचक्रमंडल विधान का आयोजन किया

गया। शोभाया ा एवं सांस्कृतिक कार्यक्रम भी आयोजित किये गये। — अशोककुमार जैन

शोलापुर (महा०) - दिनांक २-७-७९ से ९-७-७९ तक अष्टाह्निका पर्व के अवसर पर कोथली सं पंडित केशरीचंदजी 'धवल' पधारे। आपके प्रतिदिन दोनों समय समयसार तथा भक्तामर स्तो ा पर अ यंत मार्मिक प्रवचन चलते थे। जिनसे समाज काफी प्रभावित हुई।

— जीवराज हीराचंद शाह

बरायठा (म०प्र०) - अष्टाह्निका पर्व पर सिद्धचक्रमंडल विधान का आयोजन किया गया। ब्रह्मचारी बाबूलालजी एवं अ य स्थानीय विद्वानों के प्रतिदिन मोक्षमार्गप्रकाशक एवं नाटक समयसार पर प्रवचन हुए। — विजयकुमार

बैडिया (म०प्र०) - अष्टाह्निका पर्व के अवसर पर प्रतिदिन ाी हुकमचंदजी धनोते के प्रवचन हुए। रा ा को नवयुवक मंडल द्वारा भक्ति का कार्यक्रम चलता था। समापन के दिन जयपुर से पधारे हुए पंडित अभयकुमारजी का मार्मिक प्रवचन हुआ। — महेन्द्रकुमार 'प्रिंस'

नकुड़ (उ०प्र०) - अ० भा० जैन युवा फैडरेशन की स्थानीय शाखा के तत्त्वावधान में अष्टाह्निका पर्व धूमधाम से मनाया गया। इस अवसर पर सिद्धचक्र विधान एवं १२ ंटे का णमोकार मं ा का अखंड पाठ किया गया। —विजेन्द्रकुमार 'संत'

सनावद (म०प्र०) - स्थानीय मुमुक्षु मंडल के विशेष आग्रह पर टोडरमल दिगंबर जैन सिद्धांत महाविद्यालय, जयपुर के छा ा ब्रह्मचारी जतीशचंदजी एवं पंडित अभयकुमारजी, एम०कॉम० अष्टाह्निका पर्व पर यहाँ पधारे। प्रतिदिन दोनों समय मोक्षमार्गप्रकाशक एवं समयसार पर आपके प्रवचन, दोपहर में समवसरण मंडल पूजन एवं सायंकाल ब ाों की कक्षाओं का आयोजन किया गया। पर्व समाप्ति पर दो दिन के लिए बम्बई से पंडित हिम्मतभाई जोबालिया भी पधारे। सभी विद्वानों के समागम से अपूर्व धर्म प्रभावना हुई। — सोनचरण जैन

रतलाम (म०प्र०) - टोडरमल दिगंबर जैन सिद्धांत महाविद्यालय के मेधावी छा ा ब्रह्मचारी जतीशचंदजी एवं पंडित अभयकुमारजी, एम० कॉम० युवा फैडरेशन के टूर-प्रोग्राम के अंतर्गत यहाँ पधारे। सात तत्त्व, जीव-अजीव, पाप-पुण्य एवं निमित्त-उपादान पर आपके सारगर्भित प्रवचन हुए। मोहनलाल छाबड़ा

भोपाल (म०प्र०) - दिनांक १२-७-७९ से १४-७-७९ तक स्थानीय चौक मंदिर में पंडित ानचंदजी विदिशा के प्रवचन आयोजित किये गये। मोक्षमार्गप्रकाशक एवं समयसार

कलश पर हुए आपके प्रवचनों से समाज में अ छी धर्मप्रभावना हुई। इस अवसर पर ी कुंदकुंद कहान तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट को पूर्व में लिखाई गई राशि की किस्त के १३,१०३ रुपये तथा ४९१२ रुपये की नवीन राशि नगद प्राप्त हुई। **— माणिकलाल आर० गाँधी**

विदिशा (म०प्र०) - अ०भा० जैन युवा फैडरेशन की स्थानीय शाखा के तत्त्वावधान में पंडित रतनचंदजी भारिल्ल, संपादक जैनपथ प्रदर्शक का विदाई समारोह आयोजित किया गया। फैडरेशन के सदस्यों ने पंडितजी के उ वल भविष्य की कामना करते हुए उ हें भवभीनी विदाई दी। ी भारिल्लजी टोडरमल सिद्धांत महाविद्यालय, जयपुर के प्राचार्य नियुक्त किये गये हैं। **—दीपक जैन**

ान को गंभीर करके सूक्ष्मता से भीतर देख तो आ मा पकड़ में आ सकता है। एक बार विकल्प का जाल तोड़कर भीतर से अलग हो जा, फिर जाल चिपकेगा नहीं।

आ मारूपी परमपवि ा तीर्थ है, उसमें स्नान कर। आ मा पवि ाता से भरपूर है, उसके अंदर उपयोग लगा। आ मा के गुणों में सराबोर हो जा। आ मतीर्थ में ऐसा स्नान कर कि पर्याय शुद्ध हो जाये और मलिनता दूर हो।

तू आ मा में जा तो तेरा भटकना मिट जाएगा। जिसे आ मा में जाना हो वह आ मा का आधार लेता है।

परमा मा सर्वो कृष्ट कहलाता है। तू स्वयं ही परमा मा है।

आ मार्थी को स्वा याय करना चाहिए; यही आ मार्थी की खुराक है।

पू य बहिन ी

पाठकों के पत्र

बम्बई (महा०) से श्री दिनेश जे. मोदी, एडवोकेट लिखते हैं : —

क्रमबद्धपर्याय के ऊपर आपके निबंध पढ़कर अ यंत आनंदित और प्रभावित हुआ। आपने बहुत ही अ छी तरह से समझाने की कोशिश की है।

इंदौर (म०प्र०) से श्री मानव मुनि लिखते हैं : —

अप्रेल, मई, जून १९७९ के आ मधर्म के अंक पढ़ने को मिले। वास्तविक जीवन का स ा सुख भौतिक वैभव में नहीं है, आ मधर्म में है। 'आ मधर्म' के एक-एक शब्द पर गहराई से चिंतन करें तो वास्तविक ाान प्राप्त हो सकता है। इसके मा यम से आ म-कल्याण के पथ पर आगे बढ़ा जा सकता है।

कारंजा (महा०) से श्री राजकुमार ऋषभदास चंवरे, एम.ए. लिखते हैं : —

'आ मधर्म' आपके संपादन में निश्चितरूप से प्रगतिशील और उपयोगी हो रहा है।

एजवरे (लंदन) से श्री एफ. बी. भाभानी लिखते हैं : —

मैं 'आ मधर्म' के प्र येक अंक को रुचिपूर्वक पढ़ता आ रहा हूँ। इसने मुझे जीने का सही मार्ग दिखाया है। मैं विश्वस्त हूँ कि यह पि ाका मुझे इस संसार के दु:खों से मुक्त कराने में सहायक होगी। लंदन जैसे स्थान में जहाँ खाने-पीने, नाचने तथा खेलने में ही चरम सुख माना जाता है 'आ मधर्म' जीवन के लिये वरदान है।

उज्जैन (म०प्र०) से श्री हुकमचंदजी जैन लिखते हैं : —

'आ मधर्म' पि ाका का बेचैनी से इंतजार रहता है। इसका एक-एक शब्द पढ़ने से अपूर्व शांति का वेदन होता है। परमस य की ओर परिणति जागृत होती जा रही है। डॉ० भारिल्लजी के संपादक व में यह पि ाका निश्चय ही प्रभावो पादक हृदयग्राही हुई है।

दिगौड़ा (म०प्र०) से श्री हेमचंदजी जैन, एम.ए., बी.एड. लिखते हैं: —

'आ मधर्म' का संपादकीय तथा समयसार, नियमसार, द्रव्यसंग्रह आदि पर स्वामीजी के प्रवचनों का क्रमश: प्रकाशन सराहनीय ही नहीं, स्तु य है। इन सभी का पृथक्-पृथक् संकलन अमूल्य ग्रंथों का रूप ले इसके लिये प्रकाशित करते समय इस बात को ान में रखा जाये कि प्र येक अंक को अलग-अलग संकलित करने में कोई अंश कट न जाये।

[आ मधर्म के प्रकाशन में प्र येक अंश को पूर्णांक पृष्ठों में प्रकाशित करना व्यवस्था की दृष्टि से संभव नहीं है। संपूर्ण प्रवचनों को ग्रंथकार प्रकाशित करने की योजना है। प्रबंध संपादक]

प्रबंध संपादक की कलम से

कृपया निम्नलिखित सूचनाओं पर अवश्य यान दें

(१) जिन बंधुओं ने भेंट की पुस्तक के कूपन भेजे हैं, उ हें क्रमश: भेंटस्वरूप पुस्तकें भेजी जा रही हैं। कृपया धैर्य रखें।

(२) अनेक बंधुओं ने भेंट कूपन २५ पैसे के लिफाफे में रखकर भेज दिये हैं। चूँकि लिफाफे का मूल्य बढ़कर ३० पैसे हो गया है; अत: पूरे टिकिट लगे न होने के कारण उक्त प ा बैरंग होकर आ रहे हैं। कृपया प ा व्यवहार करते समय समुचित डाक टिकिट लगाने का यान रखें।

(३) कार्यालय में निम्न आजीवन सदस्यों के आ मधर्म लगातार वापस आ रहे हैं, संभवत: इनका पता गलत लिखा है। अत: जो भाई इनसे परिचित हों वे कृपया पूरा सही पता लिखकर भेज दें ताकि इ हें आ मधर्म भेजे जा सकें :

L.M. १२८७, ी धीरजलाल ब्रजलालजी शाह, महा मा गाँधी रोड, सिकंदराबाद-३

L.M. ६५७, ी सुमेरचंद जैन, १३७, अशोक विहार, फ्लैट नं० १, देहली-११००५२

अ० भा० जैन युवा फैडरेशन की नवीन शाखाऐं गठित

विगत दिनांक ब्रह्मचारी जतीशचंदजी एवं पंडित अभयकुमारजी ने युवा फैडरेशन की ओर से विभिन्न क्षेत्रों का दौरा किया। आपके सद्प्रयत्नों से खंडवा, लोहारदा तथा सनावद में फैडरेशन की नवीन शाखाऐं गठित की गईं। इसके साथ ही बड़वाह तथा बैडिया की शाखाओं का पुनर्गठन किया गया। इसी प्रकार बिहार प्रान्त के किशनगंज बाजार में श्री विजयकुमारजी अजमेरा के संयोजकत्व में भी युवा फैडरेशन की शाखा गठिन की गई।

—अखिल बंसल

फैडरेशन अध्यक्ष का तूफानी दौरा

अ० भा० जैन युवा फैडरेशन के केन्द्रीय अध्यक्ष ब्रह्मचारी जतीशचंदजी शास्त्री एवं पंडित अभयकुमारजी एम०कॉम० द्वारा २७ जून से १४ जुलाई तक का १८ दिवसीय तत्त्वप्रचार का तूफानी दौरा अनेक उपलब्धियों सहित सानंद संपन्न हुआ। रतलाम, इंदौर, बैडिया तथा खंडवा में आपके प्रवचनों का विशेष आयोजन किया गया।

१ जून से ७ जून तक अष्टाह्निका पर्व पर सनावद में प्रवास किया। यहाँ दोनों समय समवसरण मंदिर में आपके प्रवचन चलते थे। दोपहर में समवसरण मंडल विधान एवं रात्रि को भक्ति का कार्यक्रम नियमित चलता था। इस अवसर पर वीतराग-विज्ञान पाठशाला का उद्घाटन किया गया। पाठशाला के लिए ३८००) रुपये की राशि दानस्वरूप प्राप्त हुई। ९ जुलाई को युवा फैडरेशन की शाखा गठित की गई। अंतिम दिन फैडरेशन की कार्यकारिणी का गठन एवं फिल्म प्रदर्शन का आयोजन किया गया। स्मरण रहे कि यह कार्यक्रम जन-जन में तत्त्वज्ञान का प्रचार एवं युवावर्ग में तत्त्वरुचि उत्पन्न करने के उद्देश्य से किया गया।

— शिखरचंद जैन

बीस वर्ष पहले

[इस स्तंभ में आज से बीस वर्ष पहले आत्मधर्म (हिंदी) मे प्रकाशित महत्त्वपूर्ण अंशों को प्रकाशित किया जाता है।]

अनंत चतुष्टय का नाथ

मोक्ष की प्राप्ति के लिए कैसे आ मा की भावना करना चाहिए सो कहते हैं :

स्वाभाविक अनंत चतुष्टय से जो सदा सनाथ है ऐसे आ मा को सहज चिद्विलासरूप से भाना चाहिए। राग के स्वामीरूप से आ मा को नहीं भाना चाहिए, अल्प ाता वाले आ मा को नहीं भाना चाहिए; किंतु कारणरूप अनंत चतुष्टय से सदा परिपूर्ण जिसका सहज चैत यविलास है ऐसे आ मा को भाना चाहिए। भावना अर्थात् ाद्धा- ाान-रमणता।

स्वभाव में तो अनंत चतुष्टय की शक्ति सदैव विद्यमान है; उस स्वभाव चतुष्टय से आ मा 'सनाथ' है और सहज चैत यरूप से उसका विलास है; ऐसे आ मा में एकाग्र होकर उसकी भावना करने से केवल ाानादि अपूर्व चतुष्टय प्रगट होते हैं। इसप्रकार सहज चैत य विलासरूप से आ मा की भावना करना सो मोक्षमार्ग है।

अहा! आ मा तो सहज चतुष्टय का स्वामी है, उसके पास ि ाकाल अनंत चतुष्टय की शक्ति विद्यमान है; किंतु जीव ने अनंत चतुष्टय के नाथ की कभी भावना नहीं की। उस अनंत चतुष्टय के नाथ की जो भावना करे, वह मुक्तिसुंदरी का नाथ होता है।

आ मधर्म, वर्ष १५, अंक १६९, मई १९५९, कवर पृष्ठ २

Registration. No. RJ-2712

हमारे यहाँ प्राप्त प्रकाशन *

मोक्षशास्त्र	१२-००
समयसार	१२-००
समयसार पद्यानुवाद	०-७०
समयसार कलश टीका	६-००
प्रवचनसार	१२-००
पंचास्तिकाय	७-५०
नियमसार	५-५०
नियमसार पद्यानुवाद	०-४०
अष्टपाहुड़	१०-००
समयसार नाटक	७-५०
समयसार प्रवचन भाग १	६-००
समयसार प्रवचन भाग २	प्रेस में
समयसार प्रवचन भाग ३	५-००
समयसार प्रवचन भाग ४	७-००
आत्मावलोकन	३-००
श्रावकधर्म प्रकाश	३-५०
द्रव्यसंग्रह	१-५०
लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका	०-४०
प्रवचन परमागम	२-५०
धर्म की क्रिया	२-००
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तर माला भाग १	१-५०
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तर माला भाग २	१-५०
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तर माला भाग ३	१-५०
तत्त्वज्ञान तरंगिणी	५-००
अलिंग-ग्रहण प्रवचन	१-६०
वीतराग-विज्ञान भाग ३	१-००
(छहढाला पर पूज्य स्वामीजी के प्रवचन)	
बालपोथी भाग १	०-६०
बालपोथी भाग २	प्रेस में
ज्ञानस्वभाव ज्ञेयस्वभाव	४-००
बालबोध पाठमाला भाग १	०-५०
बालबोध पाठमाला भाग २	०-७०
बालबोध पाठमाला भाग ३	०-७०
वीतराग-विज्ञान पाठमालाल भाग १	०-७०
वीतराग-विज्ञान पाठमालाल भाग २	१-००
वीतराग-विज्ञान पाठमालाल भाग ३	१-००
तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग १	१-२५
तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग २	१-२५
जयपुर (खानियाँ) तत्त्वचर्चा भाग १ व २	३०-००
मोक्षमार्गप्रकाशक	प्रेस में

पंडित टोडरमल : व्यक्तित्व और कर्तृत्व		१०-००
तीर्थंकर महावीर और उनका सर्वोदय तीर्थ		५-००
" " (पॉकेट बुक साइज में हिन्दी में)		२-००
मैं कौन हूँ ?		१-००
तीर्थंकर भगवान महावीर		०-४०
वीतरागी व्यक्तित्व : भगवान महावीर		०-२५
अपने को पहचानिए		०-५०
अर्चना (पूजा संग्रह)		०-४०
मैं ज्ञानानंद स्वभावी हूँ (कैलेंडर)		०-५०
पंडित टोडरमल : जीवन और साहित्य		०-६५
कविवर बनारसीदास : जीवन और साहित्य		०-३०
सत्स्वरूप		१-७०
सुंदरलेख बालबोध पाठमाला भाग १		प्रेस में
अनेकांत और स्याद्वाद		०-३५
युगपुरुष श्री कानजीस्वामी		१-००
वीतराग-विज्ञान प्रशिक्षण निर्देशिका		३-००
सत्य की खोज (भाग १)		२-००
आचार्य अमृतचंद्र और उनका पुरुषार्थसिद्ध्युपाय	साधारण :	२-००
	सजिल्द :	३-००
धर्म के दशलक्षण	साधारण :	४-००
	सजिल्द :	५-००

Licence No.
P. P. 16-S.S.P. Jaipur City Dn.
Licensed to Post
Without Pre-Payment

If undelivered please return to :
प्रबन्ध-संपादक, आत्मधर्म
ए-४, टोडरमल स्मारक भवन, बापूनगर
जयपुर ३०२००४